रू॰ 25.00

अंक 15

अक्तूबर '98 – मार्च '99

चन्द्रताल

लाहुल-स्पीति की साहित्यिक-सांस्कृतिक त्रैमासिक

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के अन्तर्गत संख्या 65373/94 द्वारा पंजीकृत

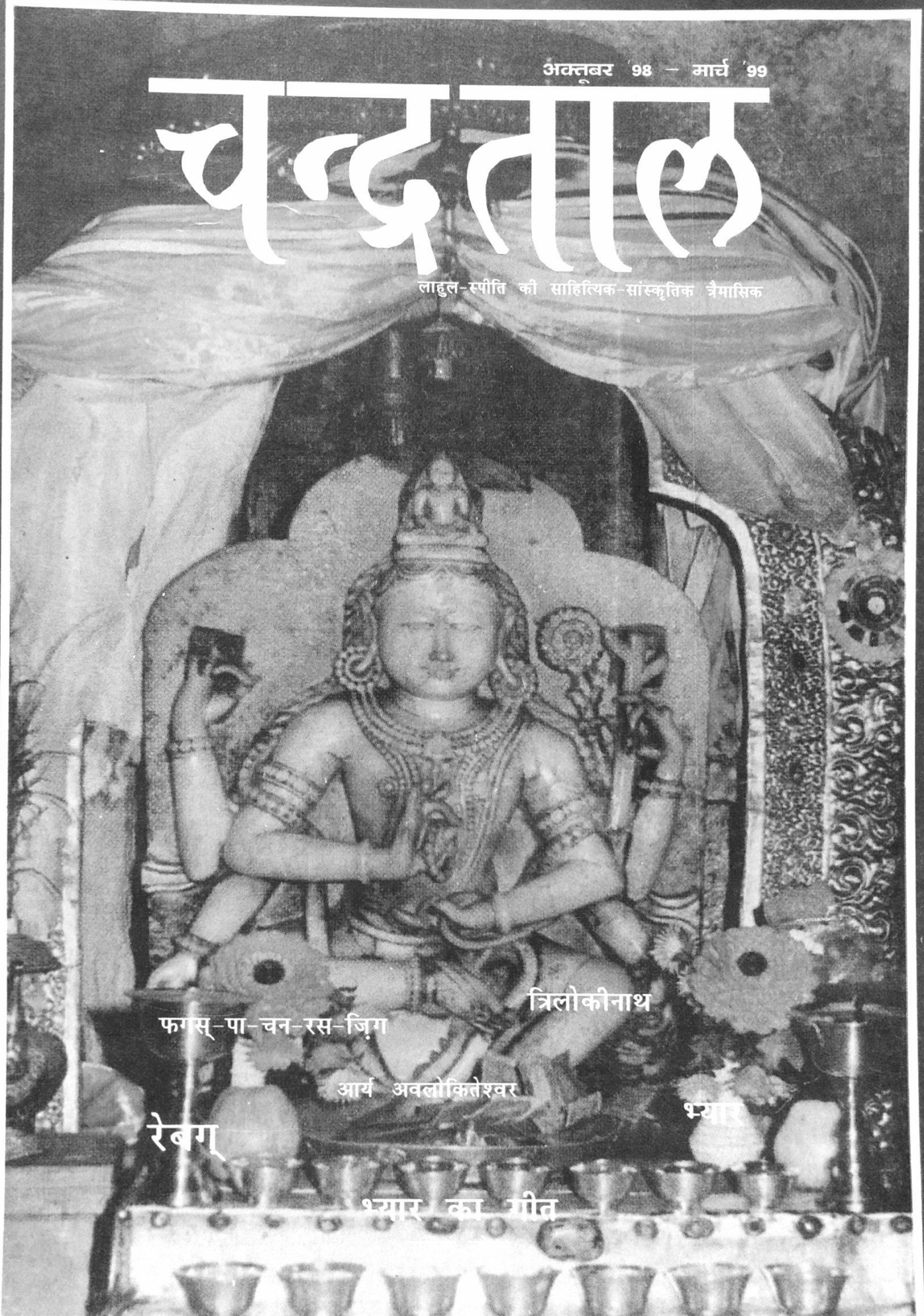

त्रिलोकीनाथ

फगस्-पा-चन-रस-ज़िग

आर्य अवलोकितेश्वर

रेबग्

भ्यार

भ्यार का गीत

संस्थापक
स्वंगला एरतोग,
लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860.

संपादक
सुश्री डॉ० छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादकीय सलाहकार
आचार्य प्रेम सिंह शौण्डा
बिशन दास परशीरा

सम्पर्क:
संपादक - चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू-175101 (हि०प्र०) फोन: (01902)-66331

वितरण प्रबन्धक:
रणवीर चन्द ठाकुर, दूकान नं० 19, सामने स्नो व्यू होटल, मॉडल टाउन, मनाली-175131 (हि०प्र०)

लाहुल में सब्स्क्रृप्शन व वितरण एजेंट
श्री रूपसिंह वारपा, लक्ष्मी बुक शॉप,
अपर केलंग, लाहुल-स्पीति - 175 132

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि:
वार्षिक : एक सौ रुपये
एक प्रति: पच्चीस रुपये

इस पत्रिका का प्रकाशन व रंगीन आवरण 'कपार्ट' लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद, भारत सरकार के सहयोग से संभव हो पाया है। पत्रिका पूर्णत: अव्यावसायिक तथा संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक है।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा, नमन, अ०बा० कुल्लू से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

आवरण एवं लेआउट
बलदेव कृष्ण घरसंगी

क्रम

संपादकीय		2
पाठकीय		3
कविता		6
टटुरिङ अन्जि तो	कर्नल प्रेम	
तन्हाई का दर्द	शाम सदन छोगज़िङ	
ओ मेरे मन	राजू शासनी	
ईश्वर उवाच : एक मुल्यांकन	सरला	
अक्स	यूसुफ़	
आकाश	सवि	
कसौटी		5
आर्थिक विकास के बोझ तले दबती सांस्कृतिक चेतना	बलदेव घरसंगी	
लोक गाथा		8
भ्यार का गीत	सतीश लोप्पा	9
क्षेत्रीय दृष्टि		12
संस्कृति		
लाहुल का क्यासुम्दोर मेला	नवङ खलेपा	13
दृष्टिकोण		
अंधेरे में बजी बीन	अजेय	16
मतान्तर		
लङदरमा के पुत्र	नवङ उपासक	16
रिपोर्ट		
हिमालयन बुद्धिस्ट सोसाईटी मनाली	छेरिंग दोर्जे	17
बहस		
कुजी विवाह कहां तक प्रासांगिक	तेनज़िगं ड्रोदोन	21
अनुकरण की मानसिकता और विकृत होती बोलियां	अजेय	27
विविध		
प्रकृति से तालमेल बिठाने में ही मानव का हित	सूरत राम ठाकुर	19
हमारी गौरवशाली शिक्षा का प्रतीक तक्षशिला विश्वविद्यालय	अंगरूप लाहुली	24
क्यों टपकता है आर.सी.सी. स्लैब?	एन.जी. बौद्ध	26
लाहुल की नारी, चिर उपेक्षिता	फुन्चोग डोलमा	32
लोक साहित्य		
शत्पा और पन्था (लोकोक्तियां)	प्रेम सिंह शौण्डा	29
कहानी		
हॉस्पिटल	दयानन्द गौतम	33
विपणन		
बीज आलू की फसल	याद राम डोगरा	35

संपादकीय

'चन्द्रताल' के प्रकाशन में विलम्ब होने से आप लोगों के मन में इस के प्रकाशन को लेकर कई प्रश्न उठ रहे होंगे, स्वाभाविक है निराश और नाराज़ भी होंगे। कई पाठक आत्मीयता वश मज़ाक में प्रश्न भी करते हैं कि कहीं चन्द्रताल फ्रीज तो नहीं हो गया? सर्दियों में चन्द्रताल से निकलने वाली नदी के प्रवाह की तरह इस की धारा भी तो अवरुद्ध तो नहीं हो गई? लीजिए! आपकी उत्सुकता का निवारण करते हुए नए कलेवर के साथ 'चन्द्रताल' आप के समक्ष प्रस्तुत है। यह अपने नाम के अनुरूप धीमी, किन्तु अबाध गति से प्रवहमान है। विलम्ब का कारण वही जो पूर्व अंकों में लिखा जा चुका है। अतः पुनरावृत्ति न कर के इस के वाह्य आवरण को रंगीन और आकर्षक बनाने के प्रयास के सम्बन्ध में दो शब्द प्रस्तुत हैं। यह परिवर्तन कपार्ट (लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद), भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता मिलने से सम्भव हो पाया है।

हम एल.पी.एस. के सदस्यों का धन्यवाद करना चाहते हैं कि आप लोगों ने ग्राहक बन कर इस पत्रिका के प्रसार तथा प्रकाशन की नियमितता में सहयोग देकर हमें प्रोत्साहित किया है। अब तक तीन अंक भेजे जा चुके हैं; यह चौथा तथा अन्तिम अंक आप के पास पहुंच रहा है। आप सब से हमारा विनम्र आग्रह है कि आप 'चन्द्रताल' के ग्राहक बने रहें। जिस तरह जीवित बीज के अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होने के लिए वायु, जल, मिट्टी की आवश्यकता होती है, उसी तरह 'चन्द्रताल' रूपी पौधा, जो अंकुरित हो चुका है, इसे पुष्पित और फलित करने के लिए आप लोगों के सौहार्द, सहयोग और प्रेरणा की आवश्यकता है। बिना आप लोगों की सहायता के यह पत्रिका अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल नहीं हो सकती। हां, कुछ सदस्यों तक पत्रिका न पहुंचने की शिकायत परोक्ष रूप से हम तक पहुंची अवश्य है, लेकिन लिखित शिकायत न होने तथा व्यक्ति विशेष के बारे सूचना न होने के कारण हम अतिरिक्त प्रति भेजने में असमर्थ रहे। अंकों सम्बन्धी भ्रान्ति भी सम्भवतः इस लिए पैदा हुई होगी, क्योंकि एल.पी.एस. के सदस्य एक साल के लिए ग्राहक बने थे; वर्ष 1998 में अवधि पूर्ण भी हो गई जब कि अंक पूरे नहीं मिले। कारण पहले ही लिखा जा चुका है - विलम्ब से प्रकाशन। विश्वास है हमारी विवशता को जान कर आप की नाराज़गी दूर हो जाएगी।

'चन्द्रताल' कुछ लोगों की वपौती नहीं है। यह आप सब की है, सम्पूर्ण घाटी की यह पत्रिका है। इस का उद्देश्य जहां लाहुल-स्पीति की लोक कला, संस्कृति, साहित्यिक विधाएं (जो मौखिक रूप में विद्यमान है) जो विलुप्ति के कगार पर है, उन्हें संरक्षित, संवर्धित व पुनर्जीवित करना है, वहीं पर्यावरण, कृषि, प्रौद्योगिकी विकास सम्बन्धित मुद्दों पर प्रकाश डालना व लेखकीय प्रतिभा को उभारना भी है। हमारी बोलियों में उक्तियों, पहेलियों, कहावतों तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्ति देने वाली समर्थ शब्दों का विपुल भण्डार है। आधुनिकता या बाह्य समाज के अनुकरण के मोह के कारण जो विस्मृति के गर्त में विलीन होता जा रहा है। इसलिए आज हम सब का यह दायित्व है कि उन्हें सुरक्षित और संरक्षित करें, ताकि भावी पीढ़ी इस अमूल्य निधि से अनभिज्ञ व वंचित न रह जाएं। आज लोकजीवन के प्रति अनुराग कम होता जा रहा है, लोकजीवन व लोकसंस्कृति की बातें पिछड़े हुए समाज का प्रतीक बनती जा रही हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यही हमारी जातीय अस्मिता के परिचायक हैं। हमारे जीवनमूल्य हमारी संवेदनाएं, आस्थाएं और मान्यताएं इसी से जुड़ी हैं। इसी लिए इसे जीवन्त बनाए रखना, इस के प्रति अनुराग पैदा करना भी पत्रिका का लक्ष्य है।

अन्त में पुनः पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग के लिए हम आप सब का आह्वान करते हैं। आइए! इस नवांकुरित पौधे को मिलजुल कर विकसित करें, ताकि यह हमारी घाटी की पहचान बन सके।

''दो हज़ार का बहादुर बच्चा'' छापने के लिए धन्यवाद। लेकिन जहां तक मुझे याद पड़ता है मैंने इसे कहानी के रूप में प्रकाशित करना नहीं चाहा था। यह कहानी जैसी लगती भी नहीं है। खैर आप लोगों का फैसला स्वीकार करना पड़ेगा।

पत्रिका सुधर रही है। इस बार कविताएं अचानक स्तरीय हो गई हैं। यूसुफ और सूरी शौंडा की बिम्ब योजना स्थापित कवियों के टक्कर की है। लगे रहो, शुभ कामनाएं। ''स्टॉकहोम सिन्ड्रोम'' एक नितान्त आधुनिक चेतना को रघुडोम व सूर्य-चन्द्र ग्रहण के देसी मिथक द्वारा समझाने का प्रयास करती रचना है। एक अनोखा प्रयोग, एक नई शुरुआत जो लाहुली लेखन के नए द्वार खोल रही है। जन-मानस को भूले-बिसरे जातीय-मिथकों के करीब ला रही है। नई चेतना को प्राचीन उपकरणों से डील करने का यह प्रयास सराहनीय है।

कसौटी में घरसंगी जी ने ''जम कर'' लिखा है। क्षुब्ध हृदय को त्राण मिला और मनोबल बढ़ा।

"हम चीखते रहेंगे
अपने कैद खाने से .....''

दरअसल इस मुद्दे को लेकर एक विस्तृत संपादकीय की अपेक्षा थी। मैडम छिमे की खामोशी ने निराश किया। मैंने भी एकाध पृष्ठ इस पर लिखा था, पता नहीं आप तक पहुंचा या नहीं। चन्द्रताल से सम्बद्ध सभी साहित्यकर्मियों से मेरी अपील है कि इस शर्मनाक एपीसोड पर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करें। चुप रहने का अर्थ है कि इस अशोभनीय घटना में हमारी भी भागीदारी है।

श्री छेरिंग दोर्जे, श्री के. अंगरूप लाहुली, डा. बनारसी लाल के लेख हमेशा की तरह ज्ञानवर्द्धक तथा संग्रहणीय हैं। यह उनके मौलिक शोधकार्य का परिणाम है। लाहुल के इतिहास, समाज और संस्कृति के कुछ जटिल प्रश्नों का उत्तर इन लेखों में सहज ही मिल जाता है, जो मुझ जैसे जिज्ञासुओं को निरन्तर परेशान करते रहे हैं। ये लेख पाश्चात्य विद्वानों की अटकलों पर आधारित भ्रम जाल को एक सिरे से हटाते चले जाने का पुण्य कार्य कर रहे हैं। वयोवृद्ध लेखकों के हम आभारी हैं।

आज मै यकीन के साथ कह सकता हूं कि इसी तरह मनोयोग से ये लेखक व संस्थाएं काम करते रहें तो हम आने वाली पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं सुदृढ साहित्यिक आधार तैयार कर पाएंगे और अपनी खोई हुई जातीय-अस्मिता को खोजने में उन्हें वे सब दिक्कतें पेश नहीं आएंगी जो आज आ रही हैं। कम से कम वे ''सांस्कृतिक विपन्नता" को न झेलें जो आज हम झेल रहे हैं। हमारी पिछली पीढ़ियां आर्थिक संकटों से ही उबर नहीं पा रही थी। अत: संस्कृति उपेक्षित रही। हम ऐसा न होने देंगे।

पिछले अंक में सुनीता मनेपा और इस अंक में प्रेम शाबला के लेख अव्यवस्थित होते हुए भी रोचक हैं। इन में जो छोटे-छोटे विवरण व पूरे प्रसंग आए हैं, वे अति महत्वपूर्ण हैं। यदि हमारे शिक्षित बुजुर्ग जन इस प्रकार के लेख लिखें तो उनकी यादों से हम कुछ और ज्यादा रत्न ढूंढ निकाल पाएंगे जो संभवत: सुनीता जी तथा प्रेम जी की पीढ़ी तक आते-आते कहीं खो गए हैं।

'कूज़ी विवाह कहां तक प्रासंगिक' में शकुन्तला जी ने बहस को सुन्दर ढंग से आगे बढ़ाया है। लेकिन संस्कृति की जो परिभाषा दी गई है - मैं आदरणीय छिमे मैडम से भी पूछना चाहूंगा कि क्या यह परिभाषा कुछ संकुचित नहीं है? किसी प्रथा को यह परिभाषा क्या महज़ इस लिए संस्कृति का हिस्सा मानने से इन्कार करना चाहिए कि उसमें कुछ दोष है। मेरी समझ में किसी समुदाय या समाज में प्रचलित प्रथाओं, रीतियों और व्यवस्थाओं की समग्रता (अपने सम्पूर्ण गुण- अवगुणों के साथ) का नाम ही संस्कृति है। ऐसे अवगुणों के कारण हमें अपनी संस्कृति पर लज्जित होने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि उनका कभी औचित्य रहा है। कभी प्रासंगिकता रही है। कुछ अन्य मुद्दे मै समझता हूं कि मतान्तर कॉलम में मैंने स्पष्ट कर दिए हैं। इन मुद्दों पर अन्य लोग भी अपने विचार रखें तो इस बहस को एक निष्कर्ष पर पहुंचाया जा सकता है।

अगले अंक की प्रतीक्षा में,

-अजेय।

आदरणीय संपादक जी,

चन्द्रताल का 13वां अंक काफी इन्तज़ारी के बाद पढ़ने को मिला।

बलदेव जी का कृषि नीति एवं आरक्षण का लाभ न उठा पाने का मूल कारण सामाजिक एवं आर्थिक बदलाव है। लाहुल की कृषि बारे जितना चिन्तन करें कम है। क्या लाहुली कृषकों में या राजनेताओं में या व्यवस्था में कमी है? आज हर लाहुली को इन विषयों पर खुल कर सामने आना होगा, अपने विचारों एवं

सुझावों को रखना होगा। तभी एक कार्य-योजना सामने आ सकेगी एवं उस पर अमल किया जा सके। हर लाहुली, चाहे वह सरकारी कर्मचारी हो, छात्र वर्ग हो, यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अगर हम कृषि के क्षेत्र में इसी तरह पिछड़ कर रहें तो लाहुल को फिर 70-80 के दशक से पहले वाली स्थिति में जाने में कोई देर नहीं लगेगी। कमियां सब में हैं मगर अपने विचारों को किसी के डर से सामने नहीं रखना अपने आप में एक अपराध है, लाहुल के साथ अन्याय है।

सरला जी का लेख ''मेहंदी से ढके हाथ'' अच्छा लगा। इस अंक में लाहुल की नारियों पर दो लेख पढ़ने को मिले (एक सरला जी एवं दूसरा सुरेश विद्यार्थी का)। मुझे पूर्ण आशा है कि आने वाले अंकों में भी इसी तरह लाहुली नारी पर लेख पढ़ने को मिलेंगे क्योंकि लाहुली नारी पर जितना लिखा जाए कम होगा।

राणा जी का लेख ''स्पीति में विभिन्न ईंधनों का मूल्य विश्लेषण'' पढ़ा। राणा जी अच्छा होता जैसा कि हर पाठक भी चाहेगा, मूल्य विश्लेषणों से तो स्थिति की वास्तविक स्थिति (जंगलों पर) लिखते। बहुचर्चित मरु-विकास परियोजना पर प्रकाश डालते। किस हद तक यह परियोजना कामयाब एवं असफल हुई है? जैसी कि आम धारणा है, हकीकत कुछ और ही है। खैर मुझे स्थिति देखने का मौका तो नहीं मिला है, अत: कृपा वस्तु स्थिति स्पष्ट करें, तो मुझ जैसे अनेक जिज्ञासु पाठकों की इच्छा पूर्ण हो जाएगी।

धन्यवाद!

-डा. रंजीत वेद

आदरणीय संपादक चन्द्रताल,

14वां अंक मिला, सभी लेख ज्ञान-वर्द्धक, मनोरंजक तथा आकर्षक लगे। चन्द्रताल तथा सभी लेखकों का आभार व्यक्त करता हूं। कहानी, बहस, मतान्तर साबित करते है कि हमारे समाज में सोच विचार की प्रक्रिया काफी उन्नत स्थिति की ओर अग्रसर है। यह किसी भी समाज के स्वस्थ विकास का संकेत है। बात भी सही है। जिस समाज में संस्कृति का मूल्यांकन तथा बढ़ रही कुरीति की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, वह समाज कभी भी विकास नहीं कर पाता है। 'गुगे-जङ-जुङ का इतिहास' हमें उत्सुकता के नए दौर में धकेल गया; लेखक जी से अनुरोध है कि इन विषयों पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराएं तथा समय-समय पर अपने लेखों द्वारा पाठकों के साथ अपने ज्ञान को बांटने की कृपा करेंगे, ऐसी मै उम्मीद करता हूं।

'कसौटी' के लिए मै घरसंगी जी को मुबारकबाद देता हूं। आपने संकीर्ण मानसिकता को 'कलम के प्रहार' से अच्छा टॉनिक प्रदान किया है। सचमुच अपने आप को शिक्षित तथा सभ्य कहने वाले कुछ लोग इस पत्रिका का सही मायनों में मोल नहीं समझ पाए हैं। इस 'अमूल्य' पत्रिका की कीमत वह पीढ़ी दर पीढ़ी नहीं चुका सकते। यह पत्रिका तो हमारी संस्कृति का 'अनमोल दर्पण' है। कभी ऐसे लोगों ने अपनी संस्कृति का इस पात्रिका के माध्यम से अवलोकन करने की चेष्टा की है? आज वे आधुनिक, सभ्य होने का दावा करते हैं। अपनी संस्कृति को छोड़कर नए संस्कृति की ओर रुख कर रहे हैं। यह कहां तक उचित है? लम्बी बहस का विषय है। मै तो बस इतना ही कहूंगा, ''धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का।''

अन्त में, चन्द्रताल परिवार अपने इस महायज्ञ में इन तुच्छ विघ्नों को दृढ़ निश्चय से पार करते हुए अपनी लग्न से एक मुकाम हासिल करे, यही मेरी दुआ है।

शुभकामनाओं सहित।

-तेनज़िन ड्रोदोन, केलंग

इस पत्रिका के दसवें अंक में सुश्री शकुन का लेख पढ़ा। शीर्षक चौंकाने वाला है। नज़र ठिटक जाती है। विषय का उत्थापन और समापन तीव्र एवं आक्रामक ढंग से किया है। इस के आदि से अन्त तक लाहुली समाज को लक्ष्य को ''क्या'' कहकर प्रश्नों की झड़ी लगा दी है। अपने कथन में तृप्ति या संतुष्टि न पाकर या कथ्य जोर देने के लिए कई वाक्यों की अनेक बार आवृत्ति की है। इस से ऐसा लगता है कि किसी तात्कालिक घटना ने उन्हें गहरा आघात पहुंचाया है। या लेख में उद्धृत सुना है आप के लाहुल में जब कभी मेले लगते है, तो जो लड़की पसन्द आती है उसे उठाकर ले जाते हैं, क्या अब भी ऐसा होता है किसी उक्ति ने क्षुब्ध कर दिया है, क्षोभ से उद्वेलित मन की अभिव्यक्ति में आक्रोश रहता है। इस लिए प्रस्तुत लेख में उद्वेग का अंश अधिक है, विचार का कम। इन्हीं करणों से विषय व्यवस्थित रूप में उपस्थित नहीं हुआ। अन्यथा ''कूज़ी'' विवाह की एक पद्धति, जिसे सुश्री शकुन कुप्रथा मानती है, संगोष्ठी की परिचर्चा की विधि से प्रस्तुत की जा सकती थी।

बाद के अंक में डा० रणजीत वेद और श्री प्रमोद कुमार की प्रतिक्रियाएं प्रकाशित होने पर सुश्री शकुन ने चौदहवें अंक में प्रतिपक्ष के उठाए प्रश्नों का खण्डन और अपने पक्ष की पृष्टि व्यवस्थित विधि से तर्क देकर की है। प्रस्तुति नपी-तुली एवं सयंत भाषा में क्रमशः हुई है। दोनों पक्षों की परिधि में आने वाले सभी संभाव्य अंशों को एक-एक कर स्पष्ट किया है। हर बिन्दु पर सशक्त तर्क विषय के अनुरूप दृष्टान्त और उपयुक्त युक्ति देखने योग्य है। प्रथम लेख की तुलना में अब उस ने अपनी अभिव्यक्ति की परिपक्वता और तार्किक बुद्धि का सुन्दर परिचय दिया है। भाषा और विचार में समान प्रवाहमयी गति है। तेरहवें अंक के सम्पादकीय में लिखित संस्कृति के स्वरूप के अंश को तथा नर-बलि के दृष्टान्त को क्रमशः सामने रखकर अन्तर मत वाले दोनों को उस ने सुन्दर युक्ति के साथ चक्रव्यूह में घेर कर पुनः उसे स्पष्ट करने हेतु आह्वान किया है। इस तरह उसने एक कुशल वाकपटु वकील के समान उन्हें अपनी वाक से कील सा दिया है।

इस तरह चौदहवें अंक तक उक्त विषय पर विचारों का खूब मन्थन हुआ है। पत्रिका से जुड़े हुए लेखकों और पाठकों के लिए शुभ लक्षण हैं। परन्तु वाद-विवाद में मर्यादा का ध्यान रखना और उसका पालन करना आवश्यक है, नहीं तो वाद-विवाद विकृत हो कर विवाद (झगड़ा) बन कर रह न जाए, यह हम सब के लिए अशुभ है। जैसे -

1. हमारा सिर दूसरों के समक्ष शर्म से झुक जाता है।
2. वे आगे जाकर अपनी संस्कृति को खाक पहचानेंगे।
3. आप ने वैचारिक अपरिपक्वता का परिचय दिया है। आप ने संस्कृति को सही मायने में समझने की कोशिश ही नहीं की।

इन तीनों वाक्यों की व्यक्तिगत आक्षेप और सीधा प्रहार करने की तीव्रता और अधिकता जतकाने के लिए उद्धृत नहीं किया है, बल्कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मर्यादा का उल्लंघन हुआ, इसलिए परामर्श है कि अपनी अभिव्यक्ति में संयम बरतें।

-आचार्य प्रेमसिंह शौण्डा, सुन्दरनगर

बधाई

जनजातीय क्षेत्र लाहुल स्पीति के युवा विधायक श्री राम लाल मार्कण्डेय को प्रदेश ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज राज्य मन्त्री बनने पर **स्वंगला एरतोग** और **चन्द्रताल** त्रैमासिक परिवार बधाई देता है। हमें पूरा विश्वास है कि माननीय मन्त्री महोदय जनजातीय क्षेत्र के चहुंमुखी विकास के लिए यथा सम्भव सहयोग देंगे व समाज के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यों के उत्थान में कार्यरत गैर सरकारी संस्थाओं को भी प्रोत्साहित करेंगे। अन्त में पुनः आपके मन्त्री बनने पर बधाई।

-सपादक

लाहुल-स्पीति लोककला, साहित्य, संस्कृति संरक्षण फण्ड

जैसा कि सभी को विदित है कि "स्वंगला एरतोग", लाहुल स्पीति की कला, साहित्य व संस्कृति के उत्थान हेतु एक रजिस्टर्ड सोसाईटी है। जो सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट, 21, 1860 के अन्तर्गत रजि० संख्या ल स/42/93 ज़िला मुख्यालय केलंग में पंजीकृत है। आप सभी जानते है कि ये लाभ रहित व स्वैच्छिक संस्था है और लाहुल स्पीति की लुप्त हो रही लोक कला, साहित्य व संस्कृति के संरक्षण और उसे पुनर्जीवित करने में लगी है, इस पुनीत कार्य में समाज के सभी लोगों से निवेदन है कि यथाशक्ति अपना योगदान दें। हर अंक में हम लाहुल स्पीति लोक कला, साहित्य व संस्कृति संरक्षण फण्ड के तहत सभी दानी सज्जनों का नाम, दान और जमा खर्चे का लेखा जोखा देते है।

क्र०	नाम	राशि
1.	डा. जय प्रकाश नारायण, वर्ल्ड हैल्थ ऑरगेनाईज़ेशन, नई दिल्ली	1,500.00
2.	श्री एन.जी. बोध कनिष्ठ अभियन्ता, केलंग, लाहुल	500.00
3.	पूर्व एकत्र	4,800.00
	कुल योग	**6,800.00**

अध्यक्ष, फण्ड कमेटी,
लाहुल स्पीति लोक कला,
साहित्य व संस्कृति संरक्षण फण्ड,
पोस्ट बॉक्स नं० 25,
मुख्य डाक घर, ढालपुर,
कुल्लू 175 101

टटुरिङ अन्जि तो

तुई हैले प्रैई मरचे टटुरिङ अपते,
ऐरतोग हब्सि प्रैई मरचे टटुरिङ अप:,

तुई क्रा लचि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग क्रा ट्रिग्ट्रि मरचे टटुरिङ अप:,

तुई डाठरे पिङट्रि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग डाठरे थग्चि मरचे टटुरिङ अप:,

तुई फसल तांङखा ल्हेई मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग फसल किर्तपूर पिपि ल्हेई मरचे टटुरिङ अप:।

तुई रङ रन्ट्रि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग हेलिकोप्टरङ ठारि खोग्चि मरचे टटुरिङ अप:।

तुई पढ़ेकि-लिखेकि मी खोग्चि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग अनपढ़ मी खोग्चि मरचे टटुरिङ अप:।

तुई टल कुटेग्ट्रि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग हाई-टैक थ्वग्चि मरचे टटुरिङ अप:।

तुई याह्-बाह् तङ साथे बङ्जि मरचे टटुरिङ अपते,
एरतोग याह्-बाह्-रे फुचि मरचे टटुरिङ अप:।

रुठे शुदा-माजि शुदा अचि कोतो
हेले-हब्सि सुचङ-फुचङ शाचि मरचे टटुरिङ अपतो।

दि शु स्वङला एरतोग,
दि शु स्वङला एरतोग।

-कर्नल प्रेम

तन्हाई का दर्द

तन्हाई का दर्द,
मेरी आंखों से नुमांया है 'शाम'।
मुद्दतों से इस सोच में गुम हूं,
किस से दिल की बात कहूं।
किसे रोकूं, किसे आवाज़ दूं,
जिसे देखो उसे अपनी पड़ी है।
मेरे अश्कों को पानी कहने वाले,
यह मेरे दास्तान की इक लड़ी है।

-शाम सदन छोग्ज़िङ

ओ मेरे मन

ओ मेरे मन, दूर गगन पे चल
पलभर के लिए ग़म की तन्हाइयों से दूर
हसीन वादियों की रंगीनियों में डूब
तारों से जड़ी चुनरी लपेट
खुशियों से भरा आंचल समेट
जीवन में पूर्णिमा सा उजाला लिए
मासूम सी एक कल्पना लिए
परियों की टोली के संग
मन में लिए उमंग
दुनियां के दु:ख से दूर
जीवन की तन्हाइयों से दूर
दूर क्षितिज में
ओ मेरे मन पल भर के लिए।

-राजू शाशनी

ईश्वर उवाच : एक मूल्यांकन

सातवें दिन जब मेरा मानव
बन कर तैयार हुआ
तो
मै अपनी अपूर्व कृति पर
गद्गद् था।
तब मुझे
इस पृथ्वी की सम्पूर्णता का आभास
हुआ था और
अपनी भी
उस दिन मैंने उस की नज़र उतार ली
पर शायद
मै स्वयं का मूल्यांकन
ठीक से न कर पाया था उस दिन
और भुलावे में आ
अपनी अपूर्व कृति को
सुरक्षा न दे पाया
या पता नहीं
क्या हुआ कि
वह दिन प्रति दिन
मुझ से दूर होता गया
बहुत आगे जा चुका मेरा मानव
बहुत प्रगति कर चुका
जब मै आरम्भ के मानव को
याद करता हूं तो हैरत भी होती है।
क्या यह वही मानव है?
हम रोज़ मिलते
ढेर सारी बातें करते
बिना किसी झिझक, झूठ व भय के
वह मेरी सुनता व मुझे सुनाता
पर जब से उस ने
बाग के वे फल खाए
वह मुझ से दूर होता गया
पहले डरता, फिर झिझकता सा
फिर उदण्डता से मुझे नकारता
और आज
आज तो हद कर दी
कहता,
मेरे स्रष्टा हो या भ्रष्टा
या हो पालनहार
हम तुम्हें खोज के रहेंगे
यह रहस्य जान के रहेंगे
और
कुछ ने तो पा भी लिया मुझे
(ऐसा वे कहते है)
वाकपटु है मेरा मानव और छली भी
खुद यह छल सीख गया।
मुझे छली कहते-कहते
वास्तव में, मै कभी छली नहीं था
पर क्या करूं?

मेरे मानव की मै क्या कहूं
जब भी मुझे वह जान न पाया
मुझी पर छोड़ दिया अनन्त अनादि कह
मै हमेशा से निहारता रहा उसे
बसता रहा उसी में
पर मेरे मानव को
इतना समय कहां
कि
अन्दर झांके अन्दर की सुने
उसे तो बहुत दूर जाना है
दूर-दूर और दूर तर
इसी दूर जाने की बेताबी और बेसब्री में
मै और मेरा मानव दूर होते जा रहे हैं
दिन व दिन दूर होते जा रहे है
आज बरसों बाद
मेरी मेरे मानव से मुलाकात हुई
वह बहुत आगे जा चुका था
बहुत दौड़ चुका था
और हांफ रहा था
पर उस की नज़रें!!!
अभी आगे
सुदूर शून्य से
कुछ झपट लाने को बेताब थीं
मैनें आवाज़ लगाई
उसे चेताने का प्रयास किया
बेताबी की तन्द्रा से जगाना चाहा
पर नहीं
न वह मुझे सुन रहा था और न देख
वह बहुत जल्दी में लग रहा था
मैने पीछे देखा उसके
कि कहीं कोई पीछा तो नहीं कर रहा
पर नहीं
उस के पीछे न तो असुर थे
और न अंगुली माल ही
फिर भी उस की आंखों में
एक खौफ़ था! एक सनक थी!
एक बेचैनी या ये तीनों!!!
उसे कोई भगा भी नहीं रहा था
फिर भी वह भाग रहा था,
और आगे बढ़ने की चाह में
सब कुछ पीछे छोड़ जा रहा था
नया संचय करना था
तो
नंगेपन की कहां सुध थी उसको
चाहा दो चार वस्त्रों से उसके
नंगेपन को ढांप दूं
पर मै
उसकी तीव्रता को पकड़ न पाया
और कुछ न कर पाया मै
अपने द्रुतगामी मानव के लिए।

-सरला

अक्स

झील सी स्थिरता
सागर की गहराई
फूलों की महक
बसन्त की मद्होशी
सावन की घटाऐं
ओस की बूंदें, और
जाम का कतरा
इन सबको मिलाकर,
जब मेरा ब्रश चलता है
तो उभरता है कैनवास पर
तुम्हारा अक्स

- युसुफ़

आकाश

मै जानती हूं, ए दोस्त
कि तुम्हारी इन बन्द मुट्ठियों में
रिक्ती के अतिरिक्त कुछ भी नहीं
फिर भी, न जाने क्यों?
तुम से बार-बार ये पूछना अच्छा लगता है
कि इन में क्या छिपा रखा है?
और फिर यह जानते हुए भी
कि तुम्हारा उत्तर एक झूठ भी है
एक सत्य भी है
यह सुन कर बड़ा सुख मिलता है
कि तुम ने मेरे लिए
अपनी इन बन्द मुट्ठियों में
छिपा रखा है सम्पूर्ण आकाश!

-सवि

लेखक बन्धुओ,

जैसा कि आप को ज्ञात है लाहुल स्पीति की लोक कला, साहित्य व संस्कृति को सही रूप में सामने लाने व लुप्त होती लोक विधाओं को संरक्षित करने व पुनर्जीवित करने तथा आस-पास की अन्य हिमालयी संस्कृतियों के साथ तुलनात्मक विवेचना द्वारा आत्म परिष्कार आदि के उद्देश्यों को लेकर "चन्द्रताल" का प्रकाशन आरम्भ किया गया था। सभी लेखक बन्धुओं से आग्रह है कि अपने हर प्रकार के लेख व कोई भी साहित्यिक रचना "चन्द्रताल" में प्रकाशनार्थ भेज कर हमारे इस अनुष्ठान को आगे बढ़ाने में अपना सहयोग दें। हिमाचल के सभी लेखक बन्धुओं से निवेदन है कि वह अपने इलाके की संस्कृति से सम्बन्धित लेख "चन्द्रताल" के लिए भेज कर हमें प्रोत्साहित व अनुगृहीत करें। लेख भेजते समय कृपया इस बात का विशेष ध्यान रखें कि लिखाई साफ-साफ हो जिसे आसानी से पढ़ा जा सके, लिखते समय पंक्तियों के बीच डबल दूरी दें अर्थात् एक पंक्ति छोड़ कर लिखें तथा पन्ने के एक ही ओर लिखें क्योंकि दोनों ओर लिखे पन्ने मुद्रण प्रक्रिया में विघ्न पैदा करते हैं। "चन्द्रताल" के पृष्ठ हर प्रकार के लेखकों व पाठकों के लिए खुले हैं। हमारा आग्रह है कि आप लोग ज़रा भी न हिचकें। पाठकगण हमें अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत कराते रहें।

संपादक

बलदेव कृष्ण घरसंगी

आर्थिक विकास के बोझ तले दबती सांस्कृतिक चेतना

सबका तो मुदावा कर डाला, अपना ही मुदावा कर न सके।

सब के तो गरेबां सी डाले, अपना ही गरेबां भूल गए - *'मज़ाज़'*

आज लाहुल वासी नव अर्जित आर्थिक सम्पन्नता को बचाए रखने के लिए इतने प्रयत्नशील हैं कि वह जीवन के मूल उद्देश्यों से दूर होते जा रहे हैं। अपने मूल से विस्थापितों की सी स्थिति बनाए रखते हुए एकाकी परिवार की ओर अग्रसर आज हम अपने नव-निर्मित असुरक्षा से घिरे रहते हैं। भाई-भाई में वैमनस्य व शंका का मूल ही यह असुरक्षा की भावना ही है। बाहर से सम्पन्न व आधुनिक दिखने वाला यह समाज आज विसंगतियों से घिरा हुआ है। समाज को एक लड़ी में पिरो कर रखने वाले सभी सूत्र इस अंधड़ में कहीं खो गए हैं। पिछले तीन दशकों में हम कहां से कहां निकल गए, अर्थ ही हमारी प्रगति का पर्याय बन गया। लेकिन हमने इस सम्पन्नता को भोगने का मूल मन्त्र ही कहीं खो दिया है। क्या यह सूत्र फिर से खोजा जा सकता है? यह सम्भव है लेकिन, आधुनिक लाहुली तो इसे तिरस्कृत कर चुका है क्योंकि यह पिछड़ापन ही है कि हम अपनी संस्कृति से जुड़े रहें, आखिर इसमें है ही क्या - मेले, त्यौहार, राग-रंग, भाई चारा, वेस्ही : नसी, पिस्केन-गोज़ी, सिद-शिङमी, नाता-गोता और ब्याह-रो यह सब नौटंकी व फालतू की चीज़ें हैं। नव-धनाढ्यता ने अब समाज में फूहड़ रूप लेना आरम्भ कर दिया है जिसका उदाहरण अब ब्याह-रो, व्यवहारिक हठधर्मिता, गांव के व्यवस्थित 'जूमी' अखबारों की सुर्खियों में दिखने लगे हैं। फिर संस्कृति है क्या? किसान का अपने खेतों से सम्बन्ध, ग्राम वासी का अपने गांव से सम्बन्ध, एक व्यक्ति का नाते-रिश्तेदारों से सम्बन्ध - क्या यह सब अब नहीं हैं? है! मगर इनका मूल तत्व ही नहीं रहा है। मेले-त्यौहार हैं लेकिन वह ज़ायका नहीं है, नाते-रिश्तेदार हैं लेकिन अंतरंगता नहीं रही, वेस्ही: नसी है लेकिन, सिर्फ काम का दबाव इसका एकमात्र कारण रह गया है। सदियों से चली आ रही सांस्कृतिक धरोहर जिन्हें हमने तिल-तिल, सींचा आज आर्थिक मूल मन्त्र के बदलते, विस्थापित मानसिकता के बोझ तले अपना मूल तत्व खो चुके हैं। इसका निवारण आवश्यक ही नहीं अपितु इस संक्रमण काल की उथल-पुथल को एक सार्थक रूप देने की प्रक्रिया को भी शुरू करना है। हमारे समाज में संस्थाओं व संगठनों की कमी नहीं है, बुद्धिजीवियों का विपुल भण्डार पड़ा है, आवश्यकता है तो सिर्फ व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से इन विसंगतियों का हल खोजना। हमारे पास अनेक मंच हैं जहां पर इस प्रक्रिया को शुरू किया जा सकता है। हमें अपने कर्त्तव्य व अधिकारों का सामूहिक व व्यक्तिगत दोनों रूपों में इस्तेमाल करते हुए चिन्तन मनन करने की आवश्यकता है। चाहे वह लाहुल-स्पीति की नई कृषि नीति ढूंढनी हो, पुरातन सांस्कृतिक धरोहरों का जीर्णोद्धार ही हो, चाहे वह मनाली में स्थित लाहुल-स्पीति की धरोहर (मनाली गोम्पा व सराय की भूमि) जिसे हमारे समाज के प्रबुद्धजन विद्वानों ने हमारी भलाई के लिए प्राप्त व स्थापित किया था के हकूक की बात करनी हों। और ऐसे सभी विषय जिससे समाज में आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक अधिकारों के बारे में चेतना बढ़े और जिससे दिशा लेकर समाज आगे बढ़े। इस तरह जब हम व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से अपने समाज की विसंगतियों का हल खोजना शुरू करेंगे तो उस खोए हुए सूत्र का मूल तत्व फिर से हमें मिल सकता है।

भ्यार का गीत

रेबग् अथवा त्रिलोकनाथ लाहुल-स्पीति के सभी समुदायों के लोगों के लिए ही पूजनीय नहीं अपितु यहां से बाहर के लोगों के लिए भी उतना ही धार्मिक आस्था का स्थान है। यहां स्थित मन्दिर में प्रतिष्ठित भव्य प्रतिमा[१] को हिन्दू भगवान शिव तथा बौद्ध 'फगपा-चरनज़ि' (फगस्-पा-चन-रस-ज़िग) अर्थात आर्य अवलोकितेश्वर के रूप में पूजते हैं। प्रस्तुत गीत में इसी प्रतिमा के तुन्दे गांव (= रेबग् का प्राचीन नाम) में लाए जाने की घटना का विवरण है। गीत कुछ इस प्रकार आरम्भ होता है --

पोहला पुतूरा ए लचा़ चारुणे गेई जी ओ।
पोहला पुतूरा ए बणू खांटे गेई जी ओ।

रेबग् के ठाकुर के यहां एक लड़का ग्वाले के रूप में काम करता था। वह युवा पोहाल प्रतिदिन भेड़-बकरियों को चराने के लिए दूर वन-खण्ड में ले जाता था।
कई गायक उपर्युक्त 'पोहला-पुतूरा' के स्थान पर 'ग्वाडू-पोहाला' शब्दों का प्रयोग करते हैं।

मैंघेरी धारे निजी मुरुती निगूती जी ओ।
निजी मुरूती ए सता मुरुता निगूती जी ओ।

मैज़ङ गांव के पार्श्व में जो धार है वहां सात जलधाराएं निकलती हैं। इन सप्त धाराओं में सात प्रतिमाएं प्रकट होती थीं।

निजी मुरूती ए सता मुरुता खेला खेलांदे जी ओ।
सता मुरूता ए सानाना कीती जी ओ।

सप्त धाराओं में ये सात प्रतिमाएं नानाविध क्रीड़ाएं करतीं और स्नान करतीं।

रोजे-रोजे ए भेड़ा बकूरी दूंधे जी ओ।
दूधा दूयी ए सानाना कीती जी ओ।

प्रतिदिन ये प्रतिमाएं भेड़-बकरियों को दूह लेतीं और दूध से स्नान करतीं।

एकाना मुरूता ए शांखे री जी ओ।
रोजे-रोजे ए भेड़ा बकूरी दूंधे जी ओ
दूधा दूयी ए सानाना कीती जी ओ।

इन प्रतिमाओं में एक प्रतिमा शंख की थी। प्रतिदिन भेड़ बकरियों को दूह कर, दूध से उस को स्नान कराया जाता।

पोहला पुतूरा ए यादा बिसूरी जी ओ।
चूरु रे सींगे पथूरा बाह्नाई जी ओ।

युवा पोहाल प्रतिदिन घर आ कर ठाकुर साहब को वन में निकलने वाली इन प्रतिमाओं और उनकी क्रीड़ाओं के बारे बताना भूल जाता। हर रोज़ वह सोचता कि आज तो बता ही दूंगा। लेकिन शाम को फिर भूल जाता। एक दिन उसे एक युक्ति सूझी। उसने चूरु के सींग पर एक पत्थर का टुकड़ा बांध दिया ताकि उसे देखकर यादाश्त बनी रहे।

बौठी सैबीणी चूरू दूहणे गेई जी ओ।
चूरु दूंधे डुगूरू बनी कारी छाड़ी जी ओ।

शाम को ठकुराइन चूरु (= सुरा-गाय) को दूहने के लिए गई, जैसे ही वह चूरु दूहने लगी चूरु ने सिर हिलाया, सींग पर बंधा पत्थर सीधा दोहन-पात्र पर जा गिरा।

शांखेरी डुगूरू ए बनी कारी छाड़ी जी ओ।
चूरु रे सींगे पथूराना बाह्नाई जी ओ।

दोहन-पात्र शंख का बना था। पत्थर की चोट लगते ही वह टुकड़े-टुकड़े हो गया। ठकुराईन जान गई कि चूरु की सींग पर पत्थर बंधा था, जो ग्वाले के सिवा और किस की हरकत हो सकती थी!

पादटिप्पणी पृष्ठ 35 पर

बौठी सैबीणी गाड़ी बवाड़ी दीती जी ओ।
पोहला पुतूरा ए शदी कारी आणी जी ओ।

ठकुराईन आग-बबूला हो गई और पोहाल को अनाप-शनाप गालियां देने लगी। पोहाल का फोरन पेश होने का हुक्म दिया गया। ग्वाले की यह करतूत!

पोहला पुतूरा ए अरूजाना कीती जी ओ।
रोजे-रोजे ए यादा बिसूरी जी ओ।

पोहाल ठाकुर के सामने पेश हुआ और भयभीत होकर निवेदन करने लगा कि एक विचित्र घटना के बारे में आपको बताना रोज़ भूल जाता था, अतः यादाश्त के लिए मैंने यह पत्थर सींग पर बांधा था। और पूरी घटना ठाकुर को सुनाता है।

निजी मुरूती ए सता मुरुता निगूती जी ओ।
सता मुरूता ए खेला खेलांदे जी ओ।

सप्तधारा में सात प्रतिमाएं निकलती हैं और वहां पर नानाविध क्रीड़ाएं करती हैं।

राजे-रोजे ए सानाना कीती जी ओ।
रोजे-रोजे ए भेड़ा बकूरी दूंधे जी ओ।

प्रतिदिन वे स्नान करती हैं और हमारी भेड़ बकरियों को दूह लेती हैं।

दूधा दूयी ए सानाना कीती जी ओ।
एकाना मुरूता ए शांखेरी जी ओ।

भेड़ बकरियों का दूध दूह कर दूध से स्नान करती है और उन में से एक प्रतिमा शंख की है।

तून्देरी राणा ए हूकूमा दीती जी ओ।
शांखेरी मुरूता ए पिठी चाके आणी जी ओ।

ग्वाले की कहानी सुन कर तुन्दे के ठाकुर ने उसे आदेश दिया कि जो शंख की प्रतिमा है उसे कल पीठ पर उठाकर यहां ले आना।

पोहला टिंडूड़ा ए मैंघेरी धारे जी ओ।
पोहला टिंडूड़ा ए नींदूरा बैठी जी ओ।
नींदूरा बैठी ए सूपूना आई जी ओ।

पोहाल टिंडू आज फिर रोज़ की तरह मैज़ङ के पार्श्व वाले धार पर गया जहां सात जल-धाराएं निकलती हैं। वहां पहुंच कर वह विश्राम करने के लिए लेटा, तो उसे नींद आ गई। ठाकुर के आदेश के कारण वह अत्यन्त व्याकुल-परेशान था, इसी उधेड़ बुन में रात आंखों में ही कट गई थी। आदेश पर अमल करे तो उन अलौकिक प्रतिमाओं के द्वारा अनिष्ट का भय और यदि आदेश का पालन न करे तो ठाकुर के दण्ड का भय! करे तो करे, क्या करे! कुदरत के खेल निराले! सोते हुए स्वप्न में उसने देखा कि प्रतिमाएं फिर क्रीड़ा करने निकली हैं। तभी शंख की प्रतिमा उसके पास आती है और उसे आश्वासन देते हुए कहती है कि हे युवा पोहाल चिंता मत करो, और डरो भी मत। जब हम स्नान क्रीड़ा आदि में लीन होंगे तो तुम मुझे शीघ्रता से उठा लेना और गांव की ओर चल देना। हां, ध्यान रहे, पीछे से अजीबो-गरीब भयानक आवाजें आएगीं और तुम्हें पीछे देखने को कहेंगी, तुम पीछे मुड़कर बिल्कुल नहीं देखना, अन्यथा पत्थर बन जाओगे। इतने में पोहाल की आंखें खुल गई।बड़ी बेसब्री से वह प्रतीक्षा करने लगा।

सता मुरूता है खेला खेलांदे जी ओ।
भेड़ा बकूरी दूयी सानाना कीती जी ओ।

नियत समय पर प्रतिमाएं निकलीं और क्रीड़ा करने लगीं। उन्होंने भेड़ बकरियों को दूह लिया और दुग्ध-स्नान करने लगीं।

पोहला टिंडूड़ा ए पिठी चाके आणी जी ओ।

शांखेरी मुरूता ए पिठी चाके आणी जी ओ।

तभी पोहाल टिंडू ने अचानक तेज़ी से प्रतिमा उठा ली और उस शंख की प्रतिमा को पीठ पर उठाकर गांव की ओर भागने लगा।

पोहला टिंडूड़ा ए बायड़ी पधूरे जी ओ।
अपू नारेणा ए सला मूखे आई जी ओ।

इस तरह शंख-प्रतिमा को उठाए भागता हुआ टिंडू पोहाल बयाड़ि मैदान तक पहुंच गया। गांव वासियों ने देखा कि यह तो साक्षात् नारायण स्वयम् पधारे हैं।

तून्देरी राणा ए दरूशाणे आई जी ओ।
बौठी सैबीणी दरूशाणे आई जी ओ।

स्वयम् नारायण के गांव में पदार्पण की बात सुनते ही तुन्दे के ठाकुर और ठकुराइन साहिबा भगवान के दर्शनों के लिए आई।

अपू नारेणा ए सलामूखे आई जी ओ।
शवे कोरो ए शवे डांडौता कीती जी ओ।

प्रतिमा के दर्शन पाते ही ठाकुर-ठकुराइन के मुख से अनायास ही निकला कि सचमुच यह तो साक्षत् नारायण स्वयम् ही पधारे हैं। उन्होंने सौ-सौ परिक्रमा और सौ-सौ दण्डवत् प्रणाम कर के अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

ग्राईं तुन्दूयाड़ा ए दरूशाणे आई जी ओ।

तुन्दे का समस्त ग्राम-जन यह समाचार सुनते ही प्रभु के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा।

जनश्रुति है कि बयाड़ि के मैदान में पहुंच कर टिंडू ने सोचा कि अब तो गांव के पास ही पहुंच चुका हूं, जरा देखूं पीछे कि ये विचित्र ध्वनियां कैसे आ रही हैं, कौन कर रहा है। जैसे ही उस ने पीछे मुड़कर देखा, वह वहीं पत्थर बन गया और वह शंख की सजीव प्रतिमा भी भूमि पर पड़ते ही निर्जीव प्रतिमा में बदल गई।पोहाल का पत्थर-रूप अवशेष अब भी मन्दिर में पड़ा हुआ है, ऐसा बताते हैं। लेकिन रेबग् के कुछ बुजुर्गों ने मुझे बातचीत के समय बताया कि टिंडू पोहाल बयाड़ि तक नहीं पहुंचा था। मैज़ङ गांव से ऊपर एक स्थान है जहां तीन कोने वाला एक शंक्वाकार पत्थर है, उसे ही उन्होंने टिंडू का प्रतीक बताया और यह भी बताया कि यही वह स्थान है जहां पोहाल ने पीछे मुड़कर देखा था और पत्थर बन गया।

जैसा भी हो, गीतकार के अनुसार टिंडू बयाड़ि के पधर तक प्रतिमा को ले आया था। जिस वक्त प्रतिमा बयाड़ि के पधर में पड़ी रही उस बीच कहते हैं कि एक कौए ने उसकी पीठ पर बीठ कर दिया, परिणाम स्वरूप अशुचिता के कारण प्रतिमा का पृष्ठ भाग खोखला हो गया। (सुना है कि प्रतिमा का पृष्ठ भाग वाकई खोखला है।)

ऐसा हो जाने पर प्रतिमा को उपयुक्त स्थान, यानि वर्तमान मन्दिर के स्थान पर ले जाया गया और वहीं प्रतिष्ठापित कर दिया गया। रेबग् के ठाकुर ने उसके लिए एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया। परन्तु दुर्भाग्य वश मन्दिर का वह प्राचीन ढांचा कुछ दशकों पूर्व हिमोघ की चपेट में आ गया। गर्भगृह तो सुरक्षित बच गया, परन्तु शिखर का भाग गिर गया। फिर परिसंस्कार कर के वर्तमान ढांचे का निर्माण किया गया।

सदियों से पता नहीं कितने ही लोग 'भ्यार' के दर्शन कर पुण्य अर्जित करते आ रहे हैं और आने वाली सदियों तक अन्य भी ऐसा करते रहेंगे। पर क्या टिंडू पोहाल का बलिदान कुछ नहीं? हमें कृतज्ञ होना चाहिए उस टिंडू पोहाल का, जिस ने अपने प्राणों की बलि देकर लोक कल्याणकारी, आध्यात्म और सामंजस्य के इस पवित्र भगवद्प्रतीक का हम सबके लिए तुन्दे गांव में अवतरण संभव किया।

आर्य अवलोकितेश्वर की अनुकम्पा सब कर रहे!!!

मूल घुरे - 'गीत-अतीत' से उद्धृत
अनुवाद - सतीश कुमार लोप्पा

गेट टुगेदर का समां फिर बंधने लगा

लाहुली लोग सर्दियों मे गेट टुगेदर की सम्भावनाओं पर फिर से विचार करने लगे है। कुछ साहसी लोग अपने रिस्क पर यह आयोजन करने के लिए उतारू रहते हैं। इस आयोजन को कुछ स्थानों पर फागली (कुस- कूं) के साथ जोड़ा जाता है तो कुछ स्थानों पर एल. एस.एस.ए. के वार्षिक समारोह के साथ। इस गेट टुगेदर में पिछले कुछ वर्षों में स्थान और समय के अनुसार काफी परिवर्तन हुए हैं। हाल ही मे सम्पन्न गेट टुगेदर (दिल्ली) में यह सामूहिक रूप से किया गया तथा इससे कुछ समय पूर्व चंडीगढ में भी यह सामूहिक रूप से सम्पन्न हुआ तथा इसमें हमारे माननीय ग्रमीण विकास मन्त्री मुख्य अतिथि थे तथा उन्होंने इस आयोजन के लिए अर्थिक मदद भी दी। इसी प्रकार शिमला में भी इसे सामूहिक रूप से फागली के अवसर पर परम्परागत तरीके से किया गया तथा इस आयोजन में भी माननीय ग्रामीण विकास मन्त्री की तरफ से आर्थिक मदद भी दी गई। कुल्लू में यह गेट टुगेदर गांव व वादी के हिसाव से होता है क्योंकि यहां पर लगभग दूसरा लाहौल ही वस गया है। तथा यहां पर सामूहिक गेट टुगेदर सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ समय पहले एल.एस.एस.ए. कुल्लू का वार्षिक गेट टुगेदर सम्पन्न हुआ जिसमें लिंग भेद की बात सामने आई है।

अब बात आती है कि आखिर यह गेट टुगेदर किस लिए? क्या यह परम्परागत रूप से लाहुलियों की मानसिकता मे गहरे पेठ बनाऐ हुए उस भावना से प्रेरित हैं जहां यह आयोजन महज़ पिसकेन-योन्द्रा के लिए किया गया हो या फिर यह आयोजन लाहुली समाज के विभिन्न पहलूओं को छूने का आगाज़ है। लेकिन जहां तक मालूम पड़ता है पिछले तीन दशकों से ऐसा कोई सामूहिक प्रयास हुआ ही नहीं है, न ही इस तरफ एक सोच पैदा करने की कोशिश की गई है। इधर हमारे पास एल.पी.एस व हॉप्स सोसाइटी जैसे इदारे हैं जहां आर्थिक मुद्दों के इलावा सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, वाणिज्य, कृषि विपणन जैसे मुद्दों पर भी बहस सम्भव है, लेकिन बिल्ली के गले में घण्टी कौन बांधेगा? ये इदारे सभा के आदर्शों व उप-विधियों से परे देखने की क्षमता रखते हुए भी अपने प्रशासनिक किले की दीवारों के पार झांकने की कोशिश भी नहीं करते। नौकरी पेशा उद्योग ही एकमात्र उद्योग है जो लाहुली समाज में फल फूल रही है। किसान व बागवान भी समर्थ सहकारी सभाओं, एल.पी.एस. व हॉप्स सोसाइटी के होते हुए भी आर्थिक बोझ से दबा हुआ है। व्यापार मे कार्यरत लाहुली लोग एक लकीर से आगे जाने की हिम्मत जुटा नहीं पा रहे हैं तब इन गेट टुगेदर्ज़ को पिसकेन व योन्द्रा तक सीमित न रख कर इन्हें अपने लाहुली मूल को सपन्दित करने का माध्यम बनाए जाने की सम्भावनाओं पर भी गौर होना चाहिए ताकि कहीं ऐसा न हो इन फल फूलों से लदी हमारे समाज की ये विभिन्न शाखाएं सूखे ठूंट हुए जड़ों पर टिकी रहे और बदलते समय का एक छोटा सा झोंका ही इसे जमीन में गिरा दें और हम जड़-रहित हो जाएं।

-घरसंगी

रोहतांग सुरंग

लाहुल और पांगी जनजातीय क्षेत्र का भावी कामधेनु द्वार

गत चन्द वर्षो से हम लोग भारत सरकार से रोहतांग जोत जो लाहुल और पांगी घाटियों को कुल्लू घाटी से मिलाने का एकमात्र दर्रा है, पर पहाड़ी के बीच से भूमिगत मार्ग द्वारा बारह मासी यातायात के प्रबन्ध करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करते रहे हैं। अन्ततः प्राप्त सूचनाओं से यह देखा जा रहा है कि सुरंग के लिए जनरल स्पैसिफिकेशन्ज़ व फीज़ीबिलिटी स्टडी फॉर सिलैक्शन ऑफ इक्युप्मैंट पूरा हो चुका है और फेज़-2 में सर्वेक्षण रिपोर्ट जो कि मै० राईट्स द्वारा किया गया है, जिस के अन्तर्गत टनल सैक्शन के डिज़ाईन व दूसरे पैरामीटर्ज़ का पता करना था, प्राप्त हो चुका है। ये सभी रिपोर्टें डायरेक्टर जनरल (सीमा सड़क) के पास स्क्रूटिनी के लिए गया था। और फेज़-2 रिपोर्ट को पूरी तरह स्क्रूटिनाईज़ कर लिया गया है। चूंकि यह प्रॉजैक्ट रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, के अधीन है और इसी मंत्रालय से बजट का प्रावधान होना है, अतः यह देखा जा रहा है कि इस सुरंग का सामरिक महत्व को उजागर करने पर ही बल दिये जाने की आवश्यकता है। गत 4 नवम्बर, 1998 को लाहुल और पांगी जनजातीय सेवा समिति के तीन सदस्य श्री टशी दावा अध्यक्ष की रहनुमाई में प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपाई जी से मिले थे। ऐसा समझा जा रहा है कि उन्होंने इस सुरंग की आवश्यकता क्यों और कैसे है पर ध्यान दिया और उन से आश्वासन भरा उत्तर भी मिला। इससे पूर्व जब श्री इन्द्र कुमार गुजराल प्रधान मंत्री थे तो लाहुल कृषक संघ के दो प्रतिनिधियों ने उनको भी प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया था। अभी हाल ही में 18 मार्च, 1999 को फिर श्री टशी दावा की अध्यक्षता में इसी शिष्ट मण्डल ने प्रधान मंत्री जी से मिलकर उन्हें लाहुल आने का सादर निमन्त्रण दिया। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में उनके लाहुल आगमन से इस मुद्दे का क्या हल निकलता है यह देखना है।

-घरसंगी

"लाहुल का क्यासुम्दोर मेला"

- नवङ तन्ज़िन खलेपा

यह तथ्य सर्वविदित है, कि हिमाचल प्रदेश देवी देवताओं की भूमि है और इस देवी-देवताओं की भूमि पर अनेक स्थानों में मेले अथवा उत्सव मनाए जाते हैं। इन्हीं मेलों व उत्सवों द्वारा स्थान विशेष के रीति-रिवाज़ और लोक संस्कृति सुरक्षित रहती है। ऐसा ही लाहुल का "क्यासम्दोर" मेला भी है जो कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में आरम्भ होता है और पोष मास के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न होता है। यह क्यासुम्दोर मेला गुला नामक स्थान पर (जो चन्द्रा घाटी के मध्य में स्थित है) मनाया जाता है। गुला दो शब्दों के मेल से बना है यथा 'गु+ला'। 'गु' का अर्थ है 'नौ' और 'ला' का अर्थ है 'देवता'। इस क्यासुम्दोर मेले में गुला के (जो अब गून्धला के नाम से जाना जाता है) नौ देवता सम्मिलित होते हैं। इस के अतिरिक्त लाहुल के देवताओं का राजा, जिसे "राजा घेपन" कहते हैं। राजा घेपन का स्थान (जिसे स्थानीय भाषा में 'थान' बोलते हैं) व मन्दिर शाशिन नामक गांव में है। "भोटी देवी" का स्थान व मन्दिर रोपसंग गांव में है। दोनों का रथ सजा कर कार्तिक शुक्ल पक्ष को "गुन्चालिंग" नामक स्थान को (जो खीनंग और साकर गांवों के मध्य में है) रथ यात्रा क्यासुम्दोर मेले के लिए शुरू होती है। उसी दिन गुला (गून्धला) के नौ देवतों के रथयात्रा क्यासुम्दोर मेले के लिए गुन्चालिंग नामक स्थान पर सभी देवी-देवता एकत्रित होने शुरू होते हैं और सायंकाल तक सभी देवी-देवता गुन्चालिंग में एकत्रित हो जाते हैं। गुन्चालिंग में भावनात्मक रूप से एक 'अपा' होती है। स्थानीय भाषा में अपा का अर्थ दादी मां है। गुन्चालिंग अपा के रख-रखाव में ही क्यासुम्दोर के दौरान सभी देवी-देवताओं के रथों को दो रात गुन्चालिंग में छोड़ा जाता है। इस मेले के दौरान सभी देवी-देवताओं के रथ यात्रा हेतु प्रत्येक देवते के साथ प्रत्येक घर से एक पुरुष साथ होता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'हरूक' कहते हैं। इस के अलावा देवता के पुजारी और चेले, जिसे स्थानीय भाषा में 'गूर' कहते हैं, देवता के साथ होते हैं।

इस मेले में सिस्सू से लेकर गून्धला तक सभी घरों से परिवार के अधिकतर सदस्य क्यासुम्दोर मेला देखने हेतु बड़ी श्रद्धा और सज-धज कर आते हैं और तीन दिनों तक मेले का आनन्द लेते हैं। यह क्यासुम्दोर मेला हर तीसरे वर्ष मनाया जाता है और हर दूसरे वर्ष गांव साकर का देवता, जो नाग देवता के नाम से जाना जाता है, का रथ सजाकर गांव में तथा श्रद्धालुओं के घर देवता सादर आमन्त्रित किया जाता है। श्रद्धालु देवता को भेंट एक या दो मीटर कपड़ा (जो रंगीन और सिल्क का होता है) और साथ में कुछ रुपए भी भेंट चढ़ाते हैं। देवता के साथ जितने हरूक अथवा श्रद्धालु होंगे सब के भोजनादि की सम्मान सहित व्यवस्था की जाती है। यह है क्यासुम्दोर मेले की भूमिका अब क्यासुम्दोर मेले का वास्तविक वर्णन आरम्भ होता है।

राजा घेपन के पुजारी (कारदार) एवं गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि कब क्यासुम्दोर मेला शुरू किया जाए। जब वे तिथि व वार तय कर लेते हैं तो वे साकर देवता के पुजारी को सूचित कर देते हैं कि अमुक दिन एवं वार को क्यासुम्दोर मेले का शुभारम्भ किया जाएगा। फिर उस निर्धारित तिथि को सभी देवी-देवताओं के रथों को सजाना शुरू कर देते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'मंगअलची' कहते हैं। गुला के देवताओं के पुजारियों को साकर देवता का पुजारी सूचित करता है मंगअलची के बारे में। मंगअलची के दूसरे दिन सभी हरूक सहित देवता के सभी गाजे-बाजे तथा नगारे, ढोल, मृदंग, छतरी, तलवार, झमधर, दरछह आदि लेकर बड़े उत्साह, उमंग और खुशी के साथ राजा घेपन की रथ यात्रा शाशिन गांव से शुरू होती है और कुछ किलोमीटर आगे चलकर गांव रोपसंग के देवी भोटी का रथ भी सम्मिलित होता है। उसके बाद क्रमशः शुलिंग व रालिंग गांव के देवता भी शामिल हो जाते हैं। रालिंग गांव का देवता शुलिंग से सम्मिलित हो जाता है। रालिंग गांव तक देवी-देवताओं की रथ यात्रा सड़क के साथ ही होती है। रालिंग से गुन्चालिंग जाने के लिए सड़क को छोड़ चढ़ाई का रास्ता अपनाना पड़ता है। आगे चढ़ाई चढ़ने के बाद गांव खले का देवता शामिल होता है। थोड़ी और चढ़ाई के पश्चात साकर गांव का देवता भी शामिल होता है। इन देवताओं की रथ यात्रा पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा की ओर गुन्चालिंग पहुंचने के लिए होती है। दूसरी ओर पश्चिम दिशा से गुला देवता और टीलिंग देवता की रथ यात्रा पूर्व दिशा की ओर गुन्चलिंग की ओर होती है। इन दो दिशाओं से आए

देवताओं का मिलन साकर गांव में होता है। जब ये देवी-देवता आपस में मिलते हैं और उस समय सभी देवताओं के गाजे-बाजे एक साथ बजते हैं तो एक अनूठी भावना, उमंग, हर्ष, श्रद्धा एवं जोश की अनुभूति होती है। देवताओं के मिलन के समय सभी गूर, पुजारी भी आपंस में गले मिलते हैं। देवताओं और गूर-पुजारियों के मिलन के पश्चात् गुन्चालिंग के लिए (जहां वास्तव में तीन दिन देवताओं का मेला लगता है, जिसे क्यासुम्दोर कहते हैं) आगे-आगे देवताओं के रथ, पीछे से गूर-पुजारी और उनके पीछे जन समूह चलते हैं। उस समय सभी देवताओं के गाजे-बाजे एक साथ बजने से जहां सारा वातावरण गुंजायमान हो जाता है, वहीं लोगों में जोश, उत्साह, उमंग और खुशी की लहर दौड़ती है। गुन्चालिंग संध्या समय ही उन की पूजा अर्चना तथा अन्य सभी औपचारिकताएं, पूरी करने के पश्चात खले और गून्धला के देवताओं के रथों को छोड़ सभी रथों को एक निश्चित् स्थान पर ज़मीन पर लिटा कर रखते हैं। दिन के समय देवताओं के रथों को जिस स्थान पर रखते हैं उसको स्थानीय भाषा में 'थड़ी' कहते हैं। रात को उस थड़ी पर पूर्व दिशा की ओर खले देवता का स्थान तथा पश्चिम दिशा में गून्धला के देवता का रथ दो छड़ी के सहारे से टिका रखते हैं जैसे वे दोनों देवता रात के संतरी हों। तत्पश्चात सभी लोग, हरूक, गूर-पुजारी अपने-अपने गन्तव्य स्थानों पर चले जाते हैं। उन सभी देवताओं के रथों के रख-रखाव का उत्तरदायित्व गुन्चालिंग अपा पर होता है।

पुरातन काल की बात है, एक व्यक्ति अपना हुक्का घर जाते समय गुन्चालिंग में ही भूल गया। जब घर पहुंचा और कुछ देर बाद हुक्का पीने की इच्छा हुई तो उसे याद आया कि वह हुक्का गुन्चालिंग में ही छोड़ कर आया है। क्योंकि उन दिनों सिगरेट, बीड़ी नाम की कोई चीज़ नहीं होती थी। रात को जब हुक्के के बिना रहा न गया तो वह व्यक्ति रात को ही गुन्चालिंग हुक्का लेने चल पड़ा। जब गुन्चालिंग पहुंचा तो वह क्या देखता है। आसमान से सारे तारे नीचे गुन्चालिंग में उतर कर देवताओं के साथ पांसा खेल रहे थे। दूसरे दिन प्रातः राजा घेपन के पुजारी जिसे 'फा' कहते हैं, कुछ हरूकों को साथ ले जा कर गुन्चालिंग में सभी देवताओं के रथों को थड़ी में 'Y' ('वाई' नुमा) छड़ी के सहारे टिका कर वापस खले आ जाते हैं। फिर नाश्ता करने के पश्चात खले से देवताओं के सभी गाजे-बाजे के साथ पुजारी, हरूक और सभी लोग (जिसे स्थानीय भाषा में 'बट-भाण' कहते हैं) के साथ बड़ी श्रद्धा, उमंग, शौक और जोश के साथ गुन्चालिंग क्यासुम्दोर मेले के लिए चलते हैं। उधर गून्धला से भी बट-भाण के साथ गुन्चालिंग के लिए प्रस्थान करते हैं। निर्धारित समय पर वे दोनों बट-भाण वाले पार्टी गांव साकर पहुंचते हैं। उस समय गांव साकर में अपार जन समूह एकत्रित हो जाता है। सभी देवताओं के गूर-पुजारी आपस में गले मिलते हैं। उस समय यह दृश्य देखने योग्य होता है। फिर सभी गूर-पुजारे वहां स्थित एक पवित्र-चश्मा (जल स्रोत) के पानी से हाथ-मुंह धोते हैं, इधर बट-भाण का सिलसिला चला ही रहता है। हाथ-मुंह धोकर सभी गूर-पुजारी एक दूसरे का हाथ पकड़ कर एक पंक्ति बनाकर आगे-आगे गुन्चालिंग के लिए चलते हैं। पीछे से बट-भाण, उसके पीछे हरूक और जनसाधारण चलते हैं। वहां (गुन्चालिंग) पहुंचने के पश्चात सभी देवताओं के रथों को थड़ी से पुजारी तथा हरूकों की सहायता से उठाते है और थड़ी के गिर्द चार-पांच चक्कर लगवा कर पुनः सभी रथों को उसी थड़ी के ऊपर टिका कर रखते हैं।

तत्पश्चात सभी गूर कमर तक नंगे हो जाते हैं और सिर के बाल बिखेर देते हैं। गूर दरछह, जिसमें शुर (देवदार की पत्तियां) डाली हुई होती है, तथा तलवार लेकर नाचते हैं। तलवार की नोक पर गूर अपनी नाभि टिका कर अपने शरीर का सारा वज़न डालकर घूमते हैं और उसी तलवार की तेज़ धार से अपने नंगे पेट पर वार करते हैं और जीभ को काटने की क्रिया करते हैं। लेकिन न नाभि से न पेट से और न जीभ से खून निकलता है और न ही चोट लगती है। इस के उपरान्त दो छुरानुमा त्रिकोण आकार 'झमधर' को दोनों होथों में पकड़ कर नोक वाला भाग अपने दोनों गालों में लगा कर घुमाते हैं और नाचते और उछलते भी रहते हैं। जब इस प्रकार का खेल समाप्त हो जाता है तो उसी झमधर को दोनों हाथों से पकड़ कर पृथ्वी पर टिका कर दरछह के ऊपर सिर झुका कर थोड़ी देर सोचकर फिर भविष्यवाणी करता है। लोगों की यह परम्परागत आस्था है कि जिस दौरान गूर इस खेल या नाच में व्यस्त रहता है और जब भविष्यवाणी करता है, देवता उस के शरीर और वाणी पर

वास करता है। जो कुछ भी गूर बोलता है वह देवता स्वयं बोल रहा होता है। भविष्यवाणी समाप्त होने के पश्चात भूत-प्रेतों को शान्त करने हेतु चारों ओर रोटी अथवा आटे के पिंड के टुकड़े-टुकड़े करके फैंकता है। फिर गूर अपने कपड़े पहनता है और बाल समेट कर टोपी लगाता है। फिर सभी देवताओं के रथों को थड़ी से उठाकर उसी मैदान (गुन्चालिंग) में थड़ी के गिर्द घुमाते है उस दौरान कोई देवता नियत स्थान को छोड़ जन समूह के बीच चला जाता है या फिर मैदान छोड़कर बाहर भी चला जाता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि यदि कोई भूत-प्रेत आया हुआ हो तो देवता उसे भगा देता है। यह घटनाक्रम समाप्त होने तक लगभग रात होने को आ जाती है। रात को फिर उसी प्रकार सभी देवताओं के रथों को छोड़ कर अपने-अपने नियत स्थान पर भूमि पर लिटा कर रखते हैं। गून्धला और खेल के देवताओं के रथों को उसी प्रकार थड़ी पर पश्चिम और पूर्व दिशा पर टिका कर रखते हैं। इस के पश्चात सभी गूर-पुजारी, हरूक और जनसाधारण अपने-अपने गन्तव्य स्थानों पर चले जाते हैं।

तीसरे दिन प्रात: राजा घेपन का पुजारी (फा) कुछ हरूकों के साथ जाकर सभी रथों को उसी थड़ी पर टिका कर आते हैं, नाश्ता करने के बाद 10 बजे खले से वैसे ही बट-भाण के साथ सभी गूर-पुजारी, हरूक और सर्वसाधारण उसी भावना के साथ पुन: पिछले दिन की क्रिया दोहराई जाती है। गूर का खेल सपाप्त होते ही शाम को सभी देवताओं के रथों को उठाते है और अपने-अपने स्थानों को (जिसे स्थानीय भाषा में 'थान' बोलते हैं) ले जाते हैं। इस प्रकार गुन्चालिंग वाला क्यासुम्दोर मेला सम्पन्न हो जाता है और भ्रमण वाला क्यासुम्दोर शुरू होता है।

तीसरे दिन सायंकाल जब गुन्चालिंग मैदान से देवताओं के रथ अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थान करते है तो राजा घेपन और भोटी देवी अन्त तक साथ ही भ्रमण करते है। गुन्चालिंग से विदा होने के पश्चात लोगों का राजा घेपन और भोटी देवी को सादर आमन्त्रण देना शुरू हो जाता है। जहां ये दो देवता आमन्त्रित होते हैं, वहां इन के गूर, पुजारी, हरूक तथा अन्य श्रद्धालु लोग सम्मिलित हो जाते हैं। यदि किसी शाम राजा घेपन और भोटी देवी को किसी के पास बुलावा नहीं हो तो इन दोनों देवताओं के रथों को जगला नामक स्थान पर, जहां राजा घेपन का अपना थान है, वहां रात को भूमि पर लिटा कर रखते हैं। दूसरे दिन जब किसी के पास राजा घेपन को बुलावा होगा तो वहां ले जाएंगे, लेकिन रात जहां हो वहां जागरा होता है। यह जागरा तब तक चलता है जब तक अपने थान में नहीं पहुंचता। जागरा का तात्पर्य जग के साथ जागरण। जागरा में तीन बकरों की बलि दी जाती है। एक जब सायंकाल देवता के रथ के साथ गूर, पुजारी, हरूक तथा अन्य श्रद्धालु लोग पहुंचते है उस समय 'वरना' अर्थात बलि दी जाती है। बलि से पूर्व गूर मन्त्रोच्चारण कर पूजा करता है। दूसरा आधी रात को 'पंजवड़' के रूप में बलि दी जाती है जोकि गूर द्वारा ही दी जाती है। लेकिन कहीं-कहीं अगली प्रात:कालीन 'मान' के रूप में बकरे के स्थान पर मक्खन का बकरा बना कर देवताओं की पूजा करते है। लेकिन यह कार्य गूर द्वारा नहीं अपितु पुजारी द्वारा सम्पन्न होता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'मरक्यूम्चा' कहते हैं। इसके अतिरिक्त राजा घेपन के साथ आए सभी श्रद्धालुओं के खाने-पीने का पूरा प्रबन्ध होता है। देवताओं के रथों को जिस घर में जागरा हो उनके आंगन को साफ करके दरी बिछा कर धूप, दीप, नेवैध य और दरछह में शुर डालकर और रात भर प्रकाश सहित सादर स्थापित करते हैं। सब लोगों को भी आंगन में आग जलाकर उसके चारों ओर बिठाते हैं और रात भर खाते-पीते और जागते रहते हैं, और बीच-बीच में देवता का पूजन इत्यादि भी होता रहता है।

अगले दिन 'मान' देने के पश्चात नाश्ता कर, अन्य घर में जहां राजा घेपन आमन्त्रित होता है, सभी गूर, पुजारी, हरूक और श्रद्धालुओं सहित जाते हैं, लेकिन उस से पूर्व यजमान सभी देवताओं को रुपए, कपड़ा आदि के रूप में भेंट चढ़ाकर सम्मान सहित विदा करता है। गुन्चालिंग से चलने के बाद जब तक अपने थान (जो शाशिन गांव में है) में राजा घेपन नहीं पहुंचते तब तक प्रतिदिन जागरा चलता रहता है। गुन्चालिंग के क्यासुम्दोर के पश्चात राजा घेपन और भोटी देवी के रथों को पट्टन वैली, जिसे चन्द्र-भागा वैली के नाम से जाना जाता है, सादर ले जाया जाता है। सारी पट्टन वैली, त्रिलोकनाथ और उदयपुर तीर्थों तक राजा घेपन को सादर आमन्त्रित करते हैं। वापसी पर केलंग के लोग भी राजा घेपन

शेष पृष्ठ 20 पर...

अंधेरे में बजी बीन

- अजेय

इस अंधेरे युग में "अपनी ही दीवारों पर अपने ही खून से" कोई आखिर कब तक लिखता रह सकता है? सवाल बड़ा पुराना है लेकिन इस का तीखापन तब बुरी तरह से कचोटने लगा जब एल.पी.एस. की जनरल हाऊस में 'चन्द्रताल' पर चर्चा हुई। कल तक जनरल हाऊस की बहस का मुख्य विषय "आलू की पुरानी बोरियां" थी। आज जब अचानक उस का स्थान "चन्द्रताल का वार्षिक चन्दा" ले लेता है तो मन में एक साथ तरह-तरह के भाव उत्पन्न होते हैं .....

दु:ख होता है साहित्य की स्थिति पर कि आज के लाहुली समाज में उस की कीमत फटी पुरानी बोरियों के समान है। हैरानी होती है शिक्षित पीढ़ी की इस मानसिकता पर कि साठ रुपये प्रति सदस्य वार्षिक चन्दा एल.पी.एस. या उस के सदस्यों पर बोझ लगता है। हंसी आती है उन विद्वानों पर जो सब कुछ जानते-बूझते हुए भी आलू की बोरियों के मुद्दों को छोड़ कर उन्हें संस्कृति की परिभाषाएं सुनाते रहते हैं। और क्रोध आता है उन जन-प्रतिनिधियों पर जो सांस्कृतिक उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहन देने की बजाय उन्हें भीतर से तोड़ देने पर उतारू हैं। स्वंगला-एरतोग तथा एल.पी.एस. ने लाहुल की चहुंमुखी प्रगति के लिए जिस सांझा मंच की परिकल्पना की थी, उस की नींव इस फैसले ने हिला दी। शायद यह वक्त से पहले देखा गया स्वप्न था जो एक ही झटके में टूट गया।

ठीक भी है, किसी पर अपनी पसन्द हम थोप नहीं सकते। स्वंगला एरतोग तथा चन्द्रताल को अपने बलबूते पर आगे बढ़ना चाहिए। ये किसी अन्य संस्था के रहमों-करम पर सांसें ले यह बात तो और भी अपमानजनक है। दु:ख तो स्वंगला एरतोग की इस नादानी पर होता है कि उसने भैंसों के आगे बीन बजाई। इसमें कोई शक नहीं कि बीन अच्छी बजी और एकदम सुर में बजी। लेकिन बीन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। वहां बात होनी चाहिए थी- चारे चरवाहे और चरागाहों की रस्से और खूंटों की, झुंड के आपसी झगड़ों की, और इन सबसे बढ़कर लाठी की (क्योंकि वह जिसके पास हुई भैंस तो उसी की हुई न?)।

लेकिन वहां बात हुई 'काले अक्षर' की। सो उनका क्या? उन्होंने सोचा कि ये अक्षर भी हमारे प्रतिरूप ही हैं जो हमारे हिस्से में सेंध लगाने आई है। इसलिए वे अक्षरों से भिड़ पड़े। संस्कृति के मधुर सुरों ने उनके अन्त:करण को छेड़ दिया और वे तिलमिला उठे।

लेकिन संस्कृति कर्मियों की जमात को घबराना नहीं चाहिए। लाहुली साहित्य के 4-5 वर्षो के छोटे से इतिहास में यह पहला मौका है जब विचार पर हमला हुआ है शब्द को ज़ब्त करने की कोशिश हुई है। अक्षर को मिटाने का दु:साहस किया गया है। हमें इस आक्रमण से शक्ति ग्रहण करनी चाहिए। एक जुट होकर इसका सामना करना चाहिए। लक्ष्य ऊंचा है, मार्ग में बहुत अंधेरा है, लेकिन हमें पहुंचना ज़रूर है, चाहे वक्षस्थल की हड्डियां चीर कर मशालें बनानी पड़ें।

सत्य के लिए सब कुछ त्यागा जा सकता है, पर सत्य को किसी भी चीज़ के लिए छोड़ा नहीं जा सकता, उसकी बलि नहीं दी जा सकती।

-स्वामी विवेकानन्द

लङ-दर-मा के पुत्र

चन्द्रताल के गत अंक में श्री हीरा लाल ठाकुर द्वारा लिखित 'बोधिसत्त्व महानुवादक रिनचेन ज़ंगपो, तिब्बत व पश्चिमी हिमालय में बौद्ध धर्म के द्वितीय पुनर्जागरण के कर्णधार' लेख पढ़ा, जिससे हमें महानुवादक (लोचावा) रिनछेन ज़ंगपो के जीवन और कार्यो के बारे विस्तृत जानकारी मिली। साथ ही इस लेख में तिब्बती राजपरम्परा के बारे में भी वर्णन किया गया है और यह लिखा गया है कि राजा लङ-दर-मा की दोनों रानियां उस की मृत्यु के समय गर्भवती थी।। यह बौद्ध ग्रन्थों एवं परम्परा के अनुरूप नही जान पड़ता। बौद्ध परम्परानुसार केवल छोटी रानी ही उस समय गर्भवती थी। सो यहां मै प्रो० के० अंगरूप लाहुली द्वारा अनूदित 'बोधि पथ प्रदीप - तिब्बती मूल एवं हिन्दी अनुवाद' पुस्तक की प्रस्तावना के कुछ अंश उद्धृत करना चाहता हूं ताकि पूरी कहानी स्पष्ट हो सके। अनुवादक ने लिखा है -- ''लङ-दर-मा की दो रानियां थी। बड़ी रानी नि:संतान थी और छोटी रानी राजा की मृत्यु के समय गर्भवती थी, बाद में उससे नम-दे-ओद-स्रुङ (903 ई०) पैदा हुआ। एक दिन बड़ी रानी भी एक सामान्य जाति के किसी बालक को गोद में लेकर मंत्रियों के समक्ष पहुंची और कहने लगी कि कल रात मुझसे यह बालक उत्पन्न हुआ है। दांत निकल चुके बालक को देखकर मन्त्रीगण रानी की चाल को भांप गए, परन्तु उनकी बात को काटने का किसी को साहस नही हुआ। यद्यपि उससे पहले रानी कई माह तक पेट पर कपड़े लत्ते बांधकर स्वयं को गर्भवती होने का नाटक कर रही थी। उस बालक का नाम युमतन पड़ा। राजगद्दी का लेकर जब रानियों में विवाद छिड़ गया तो मन्त्री भी दो दलों में बंट गए। इस दलबाज़ी की वजह से बड़ी रानी के पुत्र युमतन को वु-रु (अु-रु और यो-रु) प्रदेश का मालिक बना दिया गया और छोटी रानी के पुत्र ओद-स्रुङ को यो-रु (यस-रु और रु-ला) प्रदेश का। बाद में ये दोनों प्रदेश भी जब आपस में लड़ने लगे तो जनता ने ऊब कर विद्रोह कर दिया, फलस्वरूप देश छोटी-छोटी सरदारियों मे विभक्त होकर क्षीण हो गया।''

इस संदर्भ में मैंने लाहुल के कई बौद्ध विद्वानों व लामाओं के विचार जानने का प्रयास किया। उन सभी ने लङ-दर-मा के पुत्रों के बारे उपर्युक्त मत को ही सही माना। सो मेरा उस लेख के लेखक से विनम्र निवेदन है कि उक्त संन्दर्भ में जो विचार लेख में व्यक्त किए गए है उनके बारे विस्तार से बताएं कि उन्होंने किन स्रोतों के आधार पर ऐसा लिखा है ताकि हमारी दुविधा का निराकरण हो सके।

-नवङ उपासक

हिमालयन बुद्धिस्ट सोसाईटी मनाली

वर्तमान विवाद की पृष्ठभूमि

- छेरिंग दोर्जे

स्थान : न्यायालय, सीनियर सब जज, मनाली

जज महोदय ने 5 साल से चल रहे मुकदमे को बन्द करने का फैसला सुनाते हुए कहा कि इस मुकदमे का अन्त हुआ लगता है जो हिमालयन बुद्धिस्ट सोसाईटी के वर्तमान प्रधान श्री दूनी चन्द ठाकुर के इस ब्यान पर ***"ब्यान किया कि मैं प्रतिवादी नं० 2 सोसाईटी का प्रेज़ीडेंट हूं। सोसाईटी का वादी के साथ समझौता हो गया है, जिस के तहत डिफेंडेंट नं० 2 ने यह माना कि डिफेंडेंट नं० 2 विवादग्रस्त भूमि पर किसी किस्म का निर्माण नहीं करेंगे। न सराय बनाई है और न मार्केट कॉम्पलैक्स (शॉपिंग सेन्टर) बनाया है। और न ही प्रतिवादी नं० 2 इन को बनाएगा।"*** वास्तव में इस न्यायिक झगड़े के पीछे क्या कहानी छिपी है इस की जानकारी कम लोगों को ही है और न ही लोगों ने जानकारी लेने की तकलीफ की है।

विवादास्पद भूमि का इतिहास

इस कहानी का आरम्भ उस समय से होता है जब लाहुल और स्पीति दो अलग-अलग प्रशासनिक इकाईयों के रूप में तहसील कुल्लू, ज़िला कांगड़ा के साथ जुड़े थे और कांगड़ा का भू-भाग पूर्वी पंजाब का एक पहाड़ी ज़िला मात्र ही था। लाहुल नायब तहसीलदार के अधीन और स्पीति पर एक स्थानीय राज परिवार 'नोनो' द्वारा, जो डिवीज़नल ऑफिस (नागरिक) कुल्लू के अधीन था, सरकारी काम काज चलाया जाता था। लाहुल और स्पीति के लोगों को जब भारतीय संविधान के तहत जनजातीय घोषित किया गया तब पंजाब प्रान्त में केवल यही इलाके जनजातीय क्षेत्र में पड़ते थे। पंजाब के जनजातीय क्षेत्र के शीघ्र उत्थान हेतु एक सशक्त परामर्श दात्री परिषद्, 'पंजाब ट्राईब्ज़ एडवाईज़री कौंसिल' का गठन किया गया था। उस कौंसिल में विशेष रूप से तत्कालीन सदस्यगण स्वर्गीय श्री प्रताप चन्द, श्री लाल चन्द फूड़ा और श्री सुखदयाल पंजाब सरकार से कौंसिल की बैठकों में अनुरोध करते रहे कि लाहुल और स्पीति के गरीब जनजातीय लोग हर वर्ष शीत ऋतु में कुल्लू आ कर श्रमिकों के रूप में काम करते है, परन्तु उन के लिए स्थायी आवास का ठिकाना न होने पर बड़ी कठिनाई होती है। और पंजाब सरकार मनाली में सराय बनाने के लिए भूमि नौतोड़ के रूप में प्रदान करे।

इस प्रकार इस अनुरोध के तीन बैठकों (12वीं-13वीं-14वीं) में लगातार दोहराते रहे और पंजाब सरकार ने 14वीं बैठक एजेंडा न.-316 में लाहुल स्पीति के जनजातीय लोगों के लिए मनाली में चार बीघा भूमि बिना शुल्क सराय बनाने हेतु प्रदान करने का आदेश उपायुक्त कांगड़ा को पत्र न.-5366/5/उं दिनांक, 11/11/1960 के द्वारा भेज दी। यह सारी कार्यवाही पंजाब सरकार के तत्कालीन मुख्य मंत्री स्व० प्रताप सिंह कैरों, जो टाईब्ज एजवाईजरी कौंसिल के अध्यक्ष भी थे, के फैसले अनुसार हुआ था। कुल्लू में रह रहे लाहुल-स्पीति के कुछ लोगों ने अपने जनजातीय समाज की पहचान को स्थायी रखने हेतु इस शताब्दी के चौथे दशक में ''हिमालयन बुद्धिस्ट सोसाईटी'' का गठन किया था जिस के अध्यक्ष लाहुल के एक दूरदर्शी विद्धान स्व. ठाकुर मंगल चन्द जी थे। उपरोक्त भूमि का पट्टा इस सोसाइटी के नाम पर दिया गया। कड़ी वितीय कठिनाईयों के चलते इस सोसाइटी द्वारा कॉटेजनुमा लकड़ी का एक छोटा सा मकान बनवाया जिसे बाद में पूजा अर्चना हेतु बुद्ध मन्दिर (गोम्पा) में बदल दिया गया। तत्पश्चात् एक साहसी लामा तन्जिन छोम्फेल ने चन्दा और अपनी अर्जित पूंजी को लगा कर एक पक्के मन्दिर (गोम्पा) का निर्माण किया। परन्तु पूंजी का अभाव सराय बनाने के मार्ग में अटकता रहा। इन्हीं दिनों ठाकुर मंगल चन्द और लामा तन्जिन छोम्फेल दोनों ही स्वर्ग सिधार गए।

वर्तमान विवाद की पृष्ठभूमि

तत्पश्चात् लाहुल के एक भूतपूर्व वीर सेनाधिकारी कर्नल पृथी चन्द 'महावीर चक्र' जिन्होंने 1948 में लद्दाख को

पाकिस्तानियों के हाथ जाने से बचाया था, को हिमालयन बुद्धिस्ट सोसाईटी का अध्यक्ष बनाया गया। इस सोसाइटी के कार्यकाल के दौरान उपरोक्त भूमि पर दुकानें बना कर और उन से प्राप्त धन से सराय निर्माण की योजना बनी। जिस के तहत कुछ दुकानें व भूमि पृथक-पृथक लागों को आंवटित कर दिया था। सोसाईटी के इस फैसले का विरोध यह कह कर किया गया कि पट्टे की शर्त ''केवल सराय निर्माण हेतु'' है। यहां पर दुकान नहीं बन सकता और नौबत न्यायालय तक पहुंची और अन्त में दोनों के बीच राजीनामा यह कह कर हुआ कि यह भूमि सराय निर्माण हेतु मिली थी, केवल सराय ही बनेगा।

वर्तमान विवाद क्यों उठा?

वर्तमान संदर्भ में सराय निर्माण को फिर एक बार दुकान निर्माण की ओर मोड़ दिया गया। लेकिन इस बार उन लोगों द्वारा, जो पूर्व कमेटी के विरुद्व न्यायालय में गए थे, अब एक बार फिर इस विषय को ले कर न्यायालय का द्वार खटखटाया गया; जिस के परिणाम ऊपरलिखित ब्यान इस सोसाईटी के वर्तमान प्रधान ने दी है।

इस की संक्षिप्त पृष्ठ भूमि यह है कि जब दूसरी बार सोसाइटी के सदस्य लाट्री द्वारा 51 (इकावन) दुकानें बनाने हेतु प्रस्ताव पारित कर भूमि आबंटन की तैयारी करने लगे तो लाहुल के महिला मंडलों ने इस का विरोध किया और सर्वश्री हिशेराम, खोगसर और छेरिंग दोरजे गुस्कियार (इन पक्तियों का लेखक) के माध्यम से सीनियर सब जज कुल्लू के न्यायालय में 13/1/1995 को स्थगन आदेश प्राप्त कर के मुक्दमा आरम्भ कर दिया। फरीक दोयम की तरफ से 18/5/1996 को जवाबी दावा के तहत यह बात सामने आई कि उन्होंने लाट्री द्वारा 51 दुकानें बनवाने का प्रस्ताव पास किया था, जिस में से एक दुकान नसोगी पंचायत को मुफ्त में दी जानी थी। बकाया पचास दुकानें पचास व्यक्तियों से 50-50 हजार रुपये ले कर एक-एक दुकान किराए पर देने की बात कही है। और उस रकम से दुकानों के साथ सराय का भी निर्माण करना था। यह राशि अर्थात् कुल 25 लाख रुपये जमा कर लिए है। और सोसाईटी के नाम पर बैंक में जमा कर लिए गए हैं। यह 25 लाख रुपये 50 व्यक्तियों से 50-50 हज़ार रुपये प्रति व्यक्ति जमा किए हुए रकम के ही हैं। मुकदमे के दौरान कई प्रकार की राजनैतिक व अन्य बाते भी आई और गई, पर मुकदमा चलता ही रहा। अन्त में फरीक न. 2 ने राजीनामा करना मंजूर किया, जिस में उन्होंने दुकान व सराय उन द्वारा निर्माण न करने की बात को पक्का किया है।

आखिरकार बात ऐसे बनी

परन्तु फिर बीच में उसी कमेटी ने 19/3/99 को मनाली मे बैठक की, पुनः सराय निर्माण करने के लिए 11/4/99 को मनाली मे बैठक कर एक अन्य आम सभा बुलाई। जब 11/4/99 को फरीक न. 1 ने यह विरोध किया कि यह कमेटी न तो सराय बना सकती है और न ही दूकान। इस तरह की बातें यदि वे करते है तो यह न्यायालय की अवमानना समझा जाएगा। इस तरह इस आम सभा में यह फैसला हुआ कि 25/7/99 को मनाली में एक आम सभा बुलाई जाएगी, जिस में नई कार्यकारिणी का चुनाव होगा और नई चुनी हुई कमेटी यह तय करेगी कि सराय निर्माण किस प्रकार किया जाए।

न तेन थेरोहोति येनस्स पलितं सिरो। परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णोति वुच्चति यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्जमो दमो। स वे वंतमलो धीरो थेरो इति पवुच्चति।

'सिर के बाल के पकने से कोई स्थविर नहीं होता, केवल उसकी आयु पक गयी है। वह तो वृथा वृद्ध कहलाता है।' 'जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल और धीरपुरुष स्थविर कहलाता है।'

प्रकृति से तालमेल बिठाने में ही मानव का हित

- डा० सूरत राम ठाकुर

अस्तित्व मान रहने के लिए मानव-समाज प्राकृतिक परिपेक्ष के साथ द्रव्य ऊर्जा ओर सूचना का विनिमय करता है। मानव प्राकृतिक संसाधनों - वायु, जल, मिट्टी, आदि का प्रयोग आदिकाल से ही करता रहा है। प्रकृति के साथ इस प्रकार के भौतिक संबंधों का आधार है मनुष्य की आवश्यकताएं : प्रकृति के साथ सक्रिय सहसंबंध की यह लक्ष्यबद्ध विधि केवल मानव के लिए या सही-सही कहा जाए तो मानव समाज के लिए हितकारी है।

वास्तुकला को ही लीजिए। हम परम्परागत स्थापत्य कला को छोड़ कर पहाड़ों में विशेषकर कुल्लू में भी कंकरीट के जंगल खड़े कर रहे हैं जब कि स्थापत्य अपनी भाषा में क्षेत्र तथा उस समय का विवरण पेश करता है, जिस युग में उसकी रचना हुई। प्राय: यह विवरण लिखित दस्तावेज़ों से अधिक पूर्ण और विस्तृत होता है। भवनों में इस या उस युग में उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर प्रतिबिंबित होता है। समाज की मानसिकता का चित्रण भी स्पष्ट रूप से भवन निर्माण से होता है। स्थापत्य वह कला है जो प्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन को संचालित करती है। स्थापत्य के सिद्धान्तकार कहते है कि उसका कार्यभार जीवन प्रक्रियाओं को पृथक करना और उनके बीच संबंध स्थापित करना है।

कुल्लू घाटी की स्थापत्य कला को ही देखिए। जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक संपदा का प्रतीक है। कुल्लू में अधिकांशत: दो मंज़िलें तथा तीन मंज़िले घर भी निर्मित हुए हैं। प्रत्येक घर का निचला भाग अर्थात् ग्राऊंड फ्लोर पशुओं - जैसे गाय, बैल, भेड़-बकरी आदि रखने के लिए प्रयुक्त होता है। यह मंज़िल भी खास ऊंची नहीं होती। खिड़कियां बहुत कम होती है। दरवाज़ों की लम्बाई भी कम होती है। पशुओं को रखने वाले इन कमरों को 'खुड' कहते है। ये कमरे हमेशा गर्म रहते है ताकि ढोर डंगरों का ठण्ड से बचाव हो सके। दूसरी मंज़िल अपने रहने के लिए होती है। तीसरी मंज़िल, जो 'टाला' कहलाया जाता है, हमेशा रसोईघर के लिए प्रयुक्त होता है। अगर पर्याप्त स्थान हो तो स्टोर के रूप में भी प्रयुक्त होता है।

मकान की चिनाई काठ कुणी विधि से होती है जिससे दीवारें मज़बूत बनती है। काठकुणी पद्धति में विशेष प्रकार से दो लकड़ियों के बीच पत्थरों की चिनाई की जाती है, ये मकान आजकल के सीमेंट के मकानों से अधिक टिकाऊ होते है जो बड़े से बड़े भूकम्प के झटके सहने की असीम शक्ति रखते है। मकानों में लकड़ी का प्रयोग चिनाई के साथ-साथ फर्श डालने में भी होता है। छत ढलवां होती है, जिस में स्थानीय पत्थर के काले या सफेद स्लेट लगाए जाते है। खुड से लेकर छत तक, बराम्दा तथा कमरे, सभी का आवश्यकतानुसार सार्थक प्रयोग होता है। दीवारों की लिपाई भी स्थानीय मिट्टी के गारे से की जाती है चूंकि यहां सर्दियों में ठण्ड होती है बर्फ गिरती है। ठण्ड में कुल्लू के ये छप्पर शैली के मकान गर्म रहते है। मकान बनाते समय एक-एक चीज़ का ख्याल रखा जाता है, जैसे कि रदवाज़ों का छोटा होना इस बात का प्रतीक है कि घर में जब भी प्रवेश किया जाए तो झुक कर या प्रणाम करके ही प्रवेश हो। घर के प्रति पूजनीय भाव का इससे अच्छा और उदाहरण नहीं हो सकता।

परन्तु अभी कुछ वर्षों से यहां के गांवों में भी महानगरीय संस्कृति का बोलबाला बढ़ रहा है जिससे यहां की स्थापत्य कला बुरी तरह प्रभावित हुई। लोग बड़े शहरों की तरह रेत बजरी सीमेंट से युक्त लैंटर वाले मकान बनाने लगे है जो किसी भी तरह यहां की जलवायु के अनुकूल नहीं होते। ये तो गर्मियों में अधिक गर्म और सर्दियों में अधिक ठण्डे होते हैं। न ही इनमें प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक दिखाई देती। रेत-बजरी युक्त मकानों के लिए रेत-बजरी को ब्यास नदी के तट से निकाला जाने लगा है। अधिक खनन होने से ब्यास के किनारे बाढ़ की तथा भूमि के कटाव की भयंकर समस्या खड़ी हो गई है।

प्रसिद्ध अमेरिकी वास्तुकार फ्रैंक लाइड राइट ने वास्तुकला की महत्ता में कहा है "किसी भी युग की सच्ची पहचान करवाने में वास्तुकला के नमूने सबसे अधिक सहायक होते है। भवनों या मंदिरों में इस या उस युग में उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर प्रतिबिम्बित होता है। भवन हमें अपने युग की सामाजिक व्यवस्था, तत्कालीन लोगों के व्यवसायों, आदतों, उनकी आस्थाओं और दृष्टिकोणों की गाथा सुना सकते हैं" अत: आयातित सभ्यता का विकास जहां होने लगता है तो वहां की पहचान धीरे-धीरे लुप्त होने लगती है, और एक दिन

वह नाम मात्र को भी नहीं रहती। हिमाचल के पवर्तीय क्षेत्र, विशेषकर कुल्लू ज़िले में भी पारम्परिक भवन निर्माण को त्यागकर आयातित वास्तुकला का ज़ोर बढ़ता जा रहा है। बेहतरीन ढंग से मकानों का निर्माण, न कोई शौचालय की व्यवस्था, न वायु के आने जाने की व्सवस्था, न कोई स्नानागार और न ही गन्दे पानी की उचित निकासी - ये सब कारण प्राकृतिक छेड़-छाड़ तथा पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं।

प्रकृति बड़ी ही दयालु है। वह सभी प्राणियों की दिन खोलकर मदद करती है, उनका भरणपोषण करती है। सो प्रकृति की इस उदारता का हम गलत इस्तेमाल करेंगे तो किसी न किसी दिन प्रकृति रुष्ट होकर अपना प्रकोप दिखाती है। प्राकृतिक प्रकोप की विनाश लीला को देखकर भी हम सचेत नहीं होते। गत वर्षो ही कुल्लू वासियों को प्रकृति का प्रकोप देखने को मिला है। ब्यास, जो कि बरसों से अपने निश्चित मार्ग से प्रवाहित होती रही है, लोगों ने उसके मार्ग को बदलने की कोशिश शुरू की, उसके आस-पास अतिक्रमण करना प्रारम्भ किया। परिणाम यह हुआ कि पानी में नदी के किनारे बने बनाए घर-घराट सब बह गए।

इसी प्रकार वनों के अंधाधुंध कटान से एक तो हमारी पूरी वादी में वर्षा की कमी होने लगी। दूसरे हमारे जंगली जानवर, पशु-पक्षी सब लुप्त होने लगे। पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ने से फसलों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ने लगा। सेब की फसल बिमारी की चपेट में आ गई, और फसल खराब भी होने लगी।

पेड़ पौधों के कम होने के कारण भूक्षरण बड़ी तीव्रता से होने लगा। अत: आज आवश्यकता है कि सुनियोजित तरीके से गृह निर्माण हो, पारम्परिक वास्तुकला को प्रोत्साहित किया जाए। वनों में पेड़ लगाने के साथ-साथ खेतों खलियानों के चारों तरफ भी पेड़ लगाने की योजना बने। नदी के किनारे अवैध निर्माण पर रोक लगे। इसी तरह पर्यावरण को सुरक्षित रखने हेतु रासायनिक खादों, कीटनाशक दवाईयों के स्थान पर प्राकृतिक खादों का उपयोग किया जाए। तभी हम प्रकृति के नज़दीक आ सकते है और आने वाली बीमार, प्रदूषणयुक्त पीढ़ी का उद्धार कर सकते है।

आवश्यक सूचना

चन्द्रताल पत्रिका के सदस्य जो लाहुल आलू सहकारी सभा द्वारा बने थे या फिर व्यक्तिगत तौर पर ग्राहक बने थे, अब इस अंक के साथ अधिकांश सदस्यों की सदस्यता समाप्त हो रही है। अत: आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के पुन: ग्राहक बनकर सहयोग दें।

इस अंक से रंगीन आवरण के कारण पत्रिका का मूल्य पच्चीस रुपए हो गया है। लेकिन वार्षिक सदस्यों के लिए मूल्य पंद्रह रुपए ही रहेगा। मूल्यवृद्धि की राशि 'कपार्ट' द्वारा दी गई अनुदान राशि से वहन की जाएगी।

-सम्पादक

...पृष्ठ 15 का शेष

को सादर आमन्त्रित करते हैं। वापसी पर गून्धला होते हुए खोकसर (जो लाहुल घाटी का अन्तिम गांव है) तक लोग राजा घेपन को सादर बुलाते हैं और भेंट आदि चढ़ा कर अपने-आप को धन्य समझते है। वापस शाशिन गांव, जहां राजा घेपन का अपना थान है, पंहुचने पर रथ को बन्द करते हैं जिसे स्थानीय भाषा में 'मंगतिक्ची' बोलते हैं। इस समय तक लाहुल के अन्य सभी देवताओं के रथों को सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित रूप से रखते हैं। राजा घेपन के मंगतिक्ची के दिन अन्य सभी देवताओं के रथों का भी मंगतिक्ची करते हैं। इस प्रकार यह क्यासुम्दोर मेला लगभग तीन महीने चलता है। कभी किसी क्यासुम्दोर में राजा घेपन ज़िला कुल्लू के मलाण गांव भी जाता है। वहां राजा घेपन का भाई ज़म्बुलु मलाण गांव का देवता है। जब तक मलाण गांव होकर वापस अपने स्थान शाशिन गांव तक घेपन नहीं पहुंचता, तब तक लाहुल घाटी में हिमपात नहीं होता है। यह एक प्रमाणित बात है।

सारे लाहुल में राजा घेपन के इस क्यासुम्दोर का बड़ा महत्व है। देव भूमि होने के नाते सभी लोगों के दिल और दिमाग में राजा घेपन के प्रति पूर्ण आस्था है। लाहुल वालों के अतिरिक्त लाहुल में भ्रमण कर रहे सभी पर्यटक, एच.आर.टी.सी. के समस्त कर्मचारी राजा घेपन को आते-जाते भेंट अवश्य चढ़ाते है। तात्पर्य यह है कि हर तरह के लोग व कर्मचारी राजा घेपन में आस्था रखते हैं।

कूज़ी विवाह–कहां तक प्रासांगिक

-तेनज़िंग ड्रोदोन 'अजय'

''कूज़ी विवाह–कहां तक प्रासांगिक' लेख को पढ़ने के पश्चात् कुछ तथ्यों को स्पष्ट करने की आवश्यकता महसूस करता हूं। लेख सचमुच प्रभावशाली बन पड़ा है। मगर कुछ बातें गले से नीचे नहीं उतर पाई हैं। जिस प्रकार संपादकीय में प्रकाशित संस्कृति की परिभाषा को तर्क स्वरूप उल्लेख किया है मैं नहीं मानता कि यह उचित ही है। कारण, विभिन्न समाज शास्त्रियों ने संस्कृति को भिन्न-भिन्न तरह से परिभाषित किया है। अब संस्कृति की उपर्युक्त परिभाषा को लेकर अपने सुविधानुसार प्रयोग करना उचित न होगा।

संस्कृति का दायरा तो असीमित है, इसे चन्द परिभाषाओं द्वारा सीमित कर देना तर्क संगत न होगा, बल्कि संस्कृति के साथ अन्याय होगा। इस विवाह पद्धति के लिए 'कूज़ी' अथवा 'चोरी' शब्द का प्रयोग भी अनुचित लगता है, क्योंकि कूज़ी अथवा चोरी 'जड़ वस्तु' तथा 'जानवरों का तो हो सकता है परन्तु वयस्क मनुष्य की चोरी? बात कुछ बनती नहीं। वास्तव में इस विवाह प्रथा को आधुनिक अंग्रेज़ी शब्द 'Elopement' अथवा 'प्रेमी के साथ विवाह हेतु भागना' कहना अधिक उपयुक्त होगा। विवाह की इस प्रथा को लेखिका ने 'कुप्रथा' तथा 'लाहुल के माथे पर कलंक' आदि के रूप में उल्लेख किया है। मैं इससे सहमत नहीं हूं तथा पुरज़ोर इसका विरोध करता हूं। मानता हूं कि पिछले 15–20 वर्षों से इस प्रथा में कुछ जटिलताएं अवश्य प्रवेश कर गई हैं, मगर पूरी प्रक्रिया को कुप्रथा कह देना सर्वथा अनुचित होगा। प्राचीन लाहुली समाज में इस विवाह प्रथा में शादी की रस्म को पूरा करने के लिए वर अपने कुछ साथियों को लेकर (As a marriage witness) पूर्व निश्चित स्थान पर जाकर लड़की को पीठ पर उठाकर या अपने साथ वर के घर ले आते थे, जहां वे विवाह पद्धति की पूरी रस्म उस समाज की रीति अनुसार सम्पन्न करते थे। प्राचीन समय में इस प्रथा में किसी भी प्रकार की कुरीति का संकेत नहीं मिलता। प्राचीन भारतीयों में भी इस प्रथा को मान्यता प्राप्त थी जिसे वे 'गन्धर्व-विवाह' कहते थे। पिछले मतान्तर में 'अजेय' जी ने इस प्रथा को राक्षस विवाह का नाम दिया, जो कि अनुचित है। राक्षस विवाह में किसी पराई स्त्री को बलपूर्वक उठाकर विवाह किया जाता था और चन्द मामलों में बलात्कार भी।

अपने लेख के द्वारा सभ्य कहे जाने वाले तत्वों की इस धारणा को भी स्पष्ट करना चाहूंगा कि लाहुली समाज में लड़की का विवाह अनिच्छा से, ज़बरदस्ती कहीं भी, किसी से भी करवा दिया जाता है। लड़का भी अपनी हैसियत के अनुसार लड़की पसन्द करता है। 'गंगू तेली कभी भी राजा भोज की लड़की का सपना नहीं देखता' पसन्द की गई लड़की तक मिडीएटर या उसकी खास सहेली किसी को भनक लगे बगैर यह बात पहुंचा देती है कि फलां लड़के की तुम्हारे प्रति यह मंशा है।

साकारात्मक रवैया (पौज़ेटिव रिसपोन्स) हो तभी इस प्रकार का विवाह सम्पन्न हो पाता है। लोक लाज की वजह से प्राय: वधू के घर वाले तथा निकट सम्बन्धी इस विवाह का विरोध प्रकट करते हुए लड़के वालों को कोसते हैं। लड़की भी प्राय: बनावटी अप्रसन्नता को रो-धोकर प्रकट करती है। अब आधुनिक समाज की 'लव अफेयर' या जान पहचान बढ़ाकर विवाह के लिए राज़ी करना तो एक लम्बी प्रक्रिया साबित होती है, ऐसा हम सभी जानते है। विवाह के पश्चात् वरपक्ष क्षमा याचना करते हुए वधूपक्ष के एक-एक नज़दीकी रिश्तेदार को मनाते हैं। उस समय वर पक्ष पुराने गिले शिकवे मिटाकर उन्हें मनाने की यथा सम्भव कोशिश करता है। अपने गृहस्थ जीवन में वर कभी भी वधू को, उनके घर वालों के वक्तव्यों के प्रति स्पष्टीकरण अथवा किसी प्रकार से तंग नहीं करता, क्या यह लाहुली संस्कृति की महानता नहीं है? मैं तो यह मानता हूं कि इस प्रथा द्वारा विवाहित लोग सौ फीसदी कामयाब गृहस्थ जीवन गुज़ारते हैं। क्योंकि वधू धमकाने वाले अन्दाज़ में कहती है कि 'मुझे तो आप ज़बरदस्ती उठा लाए है'। उसके हर नाज़-नखरे को सहा जाता है।

जहां तक 'छेति' की बात है यह तो तीनों विवाह पद्धतियों में अदा किया जाता है। अदालती शादी में भी 'फेरोणी' की रस्म निभाई जाती है। चाहे अपने सामाजिक प्रतिष्ठा को कायम रखना या अड़ोस-पड़ोस, रिश्ते-नातेदारों या समाज की आलोचना को देखते हुए। कई प्रकार की जटिलता तथा आर्थिक बोझ अदालती शादी में भी प्राय: देखा जा सकता है। अब कैसे अदालती शादी को सरल, सुविधाजनक तथा आर्थिक बोझ रहित कहेंगे? वास्तव में कुछ अपवादों को छोड़कर लाहुली विवाह प्रथा में भी कम खर्च आता है, यदि कोई 'फेरोणी'

इत्यादि करके अधिक खर्च करना चाहता है तो यह अलग बात है।

लाहुली समाज की नारियों में इतना क्रांतिकारी परिवर्तन भी मैं महसूस नहीं करता कि वह अदालती शादी के लिए हामी भर देंगी, कुछ अपवादों को छोड़कर। शर्म तथा झिझक का सटीक मिश्रण स्पष्ट दिखाई देगा। कुछ परिस्थितियों में लड़की रज़ामन्द हो तो मां-बाप या रिश्तेदार इन्कार कर देते हैं। ऐसे में अदालती विवाह द्वारा अपने मां-बाप को नराज़ करने का साहस भी बहुत कम लोगों में होता है। इसलिए वह भी इस 'तथाकथित कूज़ी' को मूक सहमति दे देती है। अब बाद में वधुपक्ष के गुस्से की गाज 'बलि के बकरे' वरपक्ष पर गिरती रहे। चाहे वह छेति के रूप में हो या अन्य।

आज अगर लड़की अपने प्रेमी के साथ भागकर विवाह कर ले, बाद में समाज के सामने यही वक्तव्य दोहराया जाता है कि मुझे कूज़ी कर ले गए। उस समय इस अल्फाज़ को गर्व के साथ दोहराकर सहानुभूति बटोरने की चेष्टा करती हैं। इस तरह की दोहरी नीति का क्या औचित्य है? जिस प्रकार जोर देकर इसे 'कुप्रथा' आदि कहा है, वह सचमुच एक आम लाहुली के लिए असहनीय है। इस लेख का यह आशय भी निकालना अनुचित होगा कि मैं इस प्रथा को उत्साहित करने का प्रयास कर रहा हूं। अब नकारात्मक तथा सकारात्मक पहलू को उजागर तो करना ही होगा।

बहस में लेखिका जी के विचारों को पढ़ कर ऐसा लगता है कि वह उस प्रतिक्रिया को सहन नहीं कर पाई, अब किसी भी समाज विशेष के सांस्कृतिक, सामाजिक रीति रिवाज़ (चाहे प्रथा या कुप्रथा) के सम्बन्ध में कोई भी लेख उस समाज का ध्यान अवश्य ही आकर्षित करेगा। यह तो स्वाभाविक ही है कि उस समाज से अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं प्राप्त होंगी, इस में पुरुष अहम् की बात ही कहां रही? अपने लेख में इस प्रथा (या कुप्रथा लेखिका जी के अनुसार) को हमारे रीति रिवाज का हिस्सा माना जाता है तो यह संस्कृति से कैसे भिन्न हो सकता है? समस्त जनजातीय समाज के अपने-अपने विविधता से भरे विचित्र सांस्कृतिक रीति रिवाज़ है। अब लोगों के कहने पर वे अपने सांस्कृतिक मूल्यों को छोड़कर परिवर्तन की ओर अग्रसर होंगे तो यह बड़ी हास्यास्पद स्थिति होगी। परिवर्तन संसार का नियम है। अब यह उस समाज पर भी निर्भर करता है कि वह उस परिवर्तन को अपनाने में मानसिक रूप सुदृढ़ तथा बदली परिस्थितियों के अनुसार ढलने की कितनी क्षमता का विकास कर पाए है?

तथाकथित सभ्य समाज के ठेकेदार मौजूदा लाहुली संस्कृति की नुक्ताचीनी करें और आप ऐसा महसूस करें कि "लाहुल का मस्तक झुक रहा है" क्या मौजूदा संस्कृति का आधुनिकीकरण या नवीनीकरण करने का दु:साहसिक कदम उठाएंगे?

और क्या आप लोगों ने एक अन्य प्रथा, जिसका सम्बन्ध विवाह के साथ है, की ओर ध्यान दिया है? वह है (जो अब हमारे जनजातीय समाज में भी) तथाकथित सम्पन्न कहे जाने वाले परिवारों ने दहेज का प्रचलन शुरू कर दिया है और धीरे-धीरे दहेज की रकम बढ़ती जा रही है। क्या आप लोगों को यह आधुनिक कलंकित प्रथा एक दिन लाहुली समाज में विकराल रूप धारण कर मुश्किलात खड़ी नहीं कर देगी? वर पक्ष की ओर से अधिक धन लाने का प्रश्न तो नहीं होगा? क्या हमारे समाज की बहु-बेटियों का भी वही हश्र होगा? जो सभ्य समझे जाने वाले अपने नव-विवाहित वधुओं का तिरस्कार करते हैं और जला कर जीवन समाप्त कर देते हैं। इस प्रकार के समाचार हम आए दिन समाचारपत्रों की सुर्खियों में छाए हुए देखते हैं।

अफोर्ड कर सकने का यह मतलब तो नहीं कि हम इस कुप्रथा को जाने-अनजाने में बढ़ावा देते रहें और एक दिन विकराल रूप लेकर हमें ही डस दे। आधुनिकता का राग अलापते हुए क्या हम अपनी संस्कृति को प्रदूषित तो नहीं कर रहे हैं?

कोई भी प्रथा सामाजिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर समाज के उत्थान के लिए आरम्भ की जाती है, मगर कुछ स्वार्थी लोग इस प्रकार की प्रथा को अपने स्वार्थ-सिद्धि के लिए उपयोग कर इसे कुप्रथा की शक्ल में तबदील करने से नहीं चूकते तथा धीरे-धीरे समाज में इस प्रकार की कुप्रथा जड़ें जमा लेती है जिसका समय-समय पर सुधार होना अति आवश्यक है। परन्तु ऐसा बहुत कम मामलों में होता है। कुछ प्रथाएं ऐसी भी होती हैं जो एक विशेष समाज के लिए तो वह बहुत महत्वपूर्ण होती हैं, परन्तु कुछ अन्य समाज में हीन भावना से देखी जाती है। अत: स्वस्थ आलोचना से परिष्कृत होकर जो भी निष्कर्ष निकले उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत करना हमारा नैतिक

शेष पृष्ठ 23 पर....

सुमनम में 5वां यति उत्सव सम्पन्न

केलंग 22.3.99 आज यहां से आठ कि.मी. दूर सुमनम गांव में तीन दिवसीय शीतकालीन यति उत्सव का समापन उपायुक्त श्री टी.डी. नेगी ने किया। श्री नेगी, जो कि स्वयं एक अच्छे साहसिक खेल प्रेमी है, ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा कि सुमनम गांव में स्कीइंग की सुन्दर ढलानें उपलब्ध है तथा इन ढलानों को अर्न्तराष्ट्रीय स्की ढलानों के रूप में विकसित किए जाने की अपार संभावनाएं हैं। उत्सव के दौरान आयोजित की गई स्कीइंग प्रतियोगिता में सात युवा क्लबों ने भाग लिया तथा निम्नलिखित खिलाड़ियों को पुरस्कार वितरित किए गए -

1. **स्लालम सीनियर्ज़**	: अमरजीत सिंह	- प्रथम
	राकेश (घासा)	- द्वितीय
	प्रेमजीत (घासा)	- तृतीय
2. **जायंट स्लालम**	: सुनील (घासा)	- प्रथम
	अमरजीत	- द्वितीय
	राकेश (घासा)	- तृतीय
3. **सु. जायंट स्लालम**	: सुनील (घासा)	- प्रथम
	संजय (ग्वाज़ंग)	- द्वितीय
	राजीव (घासा)	- तृतीय
4. **क्रॉस-कन्ट्री**	: बीरसिंह (कारदंग)	- प्रथम
	संजय (ग्वाज़ंग)	- द्वितीय
	टंशीअंगरूप (कारदंग)	- तृतीय
5. **स्लालम जूनियर्स**	: जंग्पो (ग्वाज़ंग)	- प्रथम
	मास्टर जॉन (घासा)	- द्वितीय
6. **जायंट स्लालम जूनि.**	: जंग्पो (ग्वाज़ंग)	- प्रथम
	मास्टर जॉन (घासा)	- द्वितीय

इस उत्सव का आयोजन लायुल पर्वतारोहण क्लब केलंग तथा ग्रेट हिमालयन एडवेंचर स्पोर्टस एसोसिएसन (घासा) जिला लाहौल एवं स्पीती ने संयुक्त रूप से किया तथा नेहरू युवा केन्द्र केलंग ने इस आयोजन के लिए 5000. रुपए की सहयोग राशि दी।

ड्रिल्बुरी परिक्रमा के लिए स्कीइंग दल रवाना

केलंग 30.3.99 ग्रेट हिमालयन एडवेंचर स्पोर्टस एसोसिएसन का ग्यारह सदस्यीय दल आज शाम यहां से पवित्रा ड्रिल्बूरी पर्वत की परिक्रमा पर रवाना हुआ दल को श्री टी डी. नेगी उपायुक्त लाहौल-स्पीती ने हरी झंडी दिखा कर विदा किया।

दल के नेता सुमनम गांव के 25 वर्षीय युवक राज़ीव कुमार ने इस अभियान की जानकारी देते हुए बताया कि सह दल 30 मार्च की 3300 मीटर की ऊंचाई पर स्थित बरबोग गांव मे रूकेगा तथा 31 मार्च को प्रातः 10 बजे के करीब 3800 मीटर ऊंचे रांगचा जोत क्रास करके उसपार गोंधला गांव मे उतरेगा उन्होने कहा कि इस अभियान का उद्देश्य परंपरागत धार्मिक परिक्रमा के साथ-साथ साहसिक खेलों को लाहुली युवाओं में लोकप्रिय बनाना भी है। दल के साहसी युवकों पर विश्वास व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि 31 मार्च की शाम को यह परिक्रमा पूरी कर वे लोग सकुशल केलंग लौट आएंगे।

ध्यातव्य है कि इसी सीज़न में ऐसे ही एक अन्य अभियान दल को खराब मौसम के कारण बीच रास्ते से लौटना पडा़ था।

- अजेय

.....पृष्ठ 22 का शेष

कर्त्तव्य होगा।

अच्छी बात है कि लेखिका जी ने लाहुली नारी की अन्तरात्मा या आत्म सम्मान के प्रश्न को एक शुरुआत दी है समय के अनुसार परिवर्तन भी आएगा ऐसी हम उम्मीद कर सकते है।

''हज़ारों मीलों की यात्रा प्रथम
पग से ही शुरू होती है!''

हमारी गौरवशाली शिक्षा का प्रतीक,

तक्षशिला विश्वविद्यालय

-के. अंगरूप लाहुली

बौद्ध कालीन भारत पांच भू-भागों में विभक्त था। ये है :- (1) मज्झिम देश, (2) पुब्बन्त, (3) उत्तरापथ, (4) उपरान्त तथा (5) दक्षिणापथ। देश के बीच के भू-भाग को मज्झिम देश, पूर्व को पुब्बन्त, उत्तरी भाग को उत्तरापथ, पश्चिमी भाग को उपरान्त तथा दक्षिण वाले भू-खण्ड को दक्षिण पथ कहा जाता था। इन भू-भागों के अतिरिक्त एक और बृहत् क्षेत्र था जो हिमबन्त कहलाता था। सुत्तनिपात की अट्ठकथा "परमत्थ ज्योतिका" के अनुसार इस का विस्तार तीन हज़ार योजन था और इस से पांच नदियां निकलती थीं। तक्षशिला विश्वविद्यालय उत्तरापथ के अन्तर्गत देश के प्राचीनतम शिक्षा केन्द्रों में से एक था, जहां ऋग्, यजु, तथा सामवेद के अतिरिक्त 18 शिल्पों की शिक्षा देने की समुचित व्यवस्था थी। इन शिल्प विद्याओं में से भी आर्युवेद, धनुर्वेद तथा हस्तिसूत्र की शिक्षा के लिए यह संस्थान विश्व-विख्यात था।

तक्षशिला की ऐतिहासिकता अत्यन्त प्राचीन है। कोशल नरेश दशरथ की राजधानी अयोध्या थी, और इन के चार राजपुत्रों में से भरत की मां कैकेयी उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश केकय जनपद की रहने वाली थी। केकय और गांधार ये दो राज्य यद्यपि पड़ोसी के रूप में रहते थे, परन्तु आन्तरिक रूप से वे एक दूसरे से डाह रखते थे। एक समय केकय के राजा अश्वजित' ने अपने भान्जे राजकुमार भरत को फुसला कर गांधार पर आक्रमण करवा दिया। इस युद्ध में भरत की जीत हुई और इस प्रकार गांधार राज्य उन के अधिकार में आ गया। राजा भरत के दो पुत्र थे। बड़े का नाम तक्ष और अनुज पुष्कल कहलाता था। वृद्धावस्था में भरत ने ज्येष्ठ राज कुमार तक्ष को अभिषेक द्वारा राजगद्दी पर बैठा कर तथा राजधानी को उन्हीं के नाम पर 'तक्षशिला' रख कर स्वयं वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया। तक्ष के राजकाल में यद्यपि तक्षशिला का चहुंमुखी विकास हुआ, परन्तु उस समय यह इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जितना कि कालान्तर में एक शिक्षा केन्द्र के रूप में विख्यात हुआ।

तक्षशिला विश्वविद्यालय आजकल के विश्वविद्यालयों जैसा विविध संकायों का समग्र रूप नहीं, अपितु यह विभिन्न गुरुकुलों की बस्ती था जिस में बहुत से शिक्षक रहते थे। प्रधान आचार्य तीन वेदों और अष्टादश शिल्पों में पारङ्गत होते थे। ये दिशा-प्रमुख (=दिगन्त-प्रसिद्ध) आचार्य कहलाते थे। इन की सहायता के लिए कई-कई पिट्ठि आचार्य (=सहायक अध्यापक) भी होते थे। छात्रों के आवास की व्यवस्था आचार्य स्वयं करते थे। यह शिक्षा केन्द्र सुव्यवस्था और दिशा-प्रमुख आचार्यों के कारण उस समय सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। इस प्रकार यहां पर काशी, राजगृह, मिथिला, उज्जैन, कोशल-लाट, शिबि तथा कुरू आदि के छात्र अध्ययनार्थ पहुंचते थे। आचार्य के परिवार और छात्र दो प्रकार के होते थे। (1) आचार्य भाग दायक और (2) धर्म-अन्तेवासिक। पहले प्रकार के छात्र शिक्षा-शुल्क प्रदान कर दिन के समय अध्ययन करते थे, और दूसरी प्रकार के छात्र आचार्य कुल की सेवा कर संध्या और रात्रि काल में शिल्प सीखते थे। इस प्रकार गुरु-ग्राम (=विद्यापीठ) और आचार्यों का निर्वाह सम्यक रूप से चलता था। आचार्यों की आवश्यकता भी अत्यन्त न्यून होती थी। छात्रों से प्राप्त शुल्क से ही अपने परिवार और छात्रों के आवास की व्यवस्था चला लेते थे। इस प्रकार इस गुरुकुलीय विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए छात्रों को अर्थ बाधक नहीं होता था, न ही सवर्ण-अवर्ण का भेद-भाव होता था। 16 वर्ष की अवस्था प्राप्त कोई भी छात्र यहां पर शिक्षा ग्रहण कर सकता था।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि आचार्य किसी संस्थागत सदस्य नहीं होते थे, न ही आज कल की भांति किसी केन्द्रीय संस्था की ओर से निर्धारित विषय ही पढ़ाते थे। दिशा-प्रमुख आचार्य अपनी-अपनी व्यवस्था के अनुसार छात्रों को प्रवेश देते थे और छात्रों को उन की अपनी रुचि के अनुसार ही शिक्षा दी जाती थी। लोक-विश्रुत जीवक कौमार्य मृत्य के जीवन चरित से भी इन बातों की पुष्टि होती है कि छात्रों को अपने ऐच्छिक विषय ही पढ़ाए जाते थे।

जीवक मगधराज बिम्बसार के पुत्र अभय राजकुमार का दत्तक पुत्र था। युवावस्था को प्राप्त करने पर एक दिन उसने सोचा कि राजकुल महत्वपूर्ण होता है। यहां पर किसी शिल्प के बिना शोभा नहीं देता, क्यों न वैद्यक सीखूं? उस समय तक्षशिला में एक दिशा-प्रमुख वैद्य रहता था। जीवक क्रमशः जिधर तक्षशिला थी, जहां वह वैद्य रहता था। वहां जा कर उसने वैद्य से कहा - "आचार्य! मै शिल्प सीखना

चाहता हूं। तो भणे (=हे) जीवक सीखो।"[2] जीवक कौमार्य भृत्य एक धर्म-अन्तेवासी के रूप में उन दिशा-प्रमुख वैद्य के पास सात वर्ष तक वैधक सीखता रहा। एक समय वह आचार्य कुल की सेवा करता था और एक समय पढ़ता था।

सुत सोम जातक के अनुसार प्रत्येक दिशा प्रमुख आचार्यों के पास शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या 103 होती थी। परन्तु कुछ अन्य जातकों[3] से पता चला है कि इन आचार्यों के पास शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या पांच-पांच सौ तक होती थी। दिशा प्रमुख आचार्य पिट्ठि आचार्य के अतिरिक्त अपने जेठन्तेवासिक अर्थात् प्रधान शिष्यों को भी अपने सहायक के रूप में रख लेते थे[4], और बाद में उन्हें अपने विद्यापीठ में पूर्ण शिक्षक नियुक्त कर देते थे। कुछ जातकों में तक्षशिला शिक्षा संस्थान में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या सामान्यत: पांच सौ होने का वर्णन मिलता है। नि:सन्देह ई.पूर्व 6 वी, 7 वीं शताब्दी तक यह उत्तरी भारत में एक अत्यन्त महत्वपूर्णशिक्षा संस्थान बन चुका था। इस केन्द्र की महत्ता का पता इस से भी चलता है कि यहां से शिक्षा प्राप्त स्नातक वाराणसी के शिक्षा केन्द्रों में प्रमुख आचार्य के रूप में नियुक्त होते थे[5]। जो पुरा-काल में तक्षशिला के बाद दूसरी श्रेणी का शिक्षा संस्थान माना जाता था। इस प्रकार बहुत से यूनानी और चीनी यात्रियों ने भी तक्षशिला के वैभव और विस्तार का बहुत कुछ वर्णन किया है।

भगवान बुद्ध और मगधराज श्रेणिक बिम्बसार के राजवैद्य जीवक कौमार्य भृत्य इसी तक्षशिला विश्वविद्यालय के ही छात्र थे। जिन्होंने एक दिशा-प्रमुख वैद्य के शिष्यत्व में सात वर्ष तक वैद्यक का अध्ययन कर आयुर्विज्ञान में दक्षता प्राप्त की थी। सात वर्ष तक दिन-रात एक करके पढ़ने पर भी जब उन्हें वैद्यक का थाह दिखाई नहीं दिया तो एक दिन वे चिन्तित हो वैद्य के पास जाकर बोले - "आचार्य! मै दिन-रात अध्ययन करता हूं, परन्तु इस शिल्प का अन्त मालूम नहीं पड़ता"। इस पर दिशा-प्रमुख वैद्य ने कहा - "तो भणे जीवक! खनित (=कुदाल) ले कर तक्षशिला की चारों ओर योजन-योजन घूम कर अभैषज्य कोई जड़ी-बूटी ले आओ।" जीवक ने तक्षशिला की चारों ओर घूमकर देखा, परन्तु उन्हें कोई अभैषज्य उपल्ब्ध नहीं हुआ। लौटकर आचार्य के पास आकर बोले - "आचार्य! विद्यालय के चारों ओर योजन-योजन भर कोई भी अभैषज्य बूटी प्राप्त नहीं है।" तब आचार्य ने कहा! "सीख गए भणे जीवक। आयुर्विद्या का इतना ज्ञान तुम्हारी जीविका के लिए पर्याप्त है। अब अपने जनपद में लौटकर लोक-कल्याण में लग जाओ।"[6]

चिकित्सा शास्त्री जीवक के अतिरिक्त, राजनीति के विश्रुत पण्डित चाणक्य, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री और अर्थ-शास्त्र के प्रणेता कौटिल्य के नाम से भी प्रसिद्ध है, तथा अष्टाध्यायी के रचयिता विख्यात वैयाकरण आचार्य पाणिनी जैसे विद्वान भी इस विश्वविद्यालय की देन थे।

समय की गति तेज़ी से बदलती गई। 5 वीं शताब्दी के आरम्भ में गांधार पर उत्तर-पश्चिम की ओर से शकों ओर हूणों का भीषण आक्रमण हुआ। उस समय यह जनपद सिन्धु नदी के दोनों ओर फैला हुआ था, और यह गुप्त साम्राज्य के अधिपत्य में था। सम्राट स्कन्द गुप्त ने हूणों का डट कर सामना किया, परन्तु शत्रु की विशाल सेना के सामने गुप्त सम्राट को पराजय स्वीकार करनी पड़ी।[7] गांधार के हूणों के अधिकार में जाते ही वहां के बौद्धों पर अत्याचार आरम्भ हो गए। बुद्ध और बोधिसत्त्वों की प्रतिमाओं को तोड़ा गया और चैत्य और विहारों को नष्ट किया गया। इसी बर्बरता में तक्षशिला विश्वविद्यालय का अस्तित्व भी मिट्टी में मिल गया। इस प्रकार युगों-युगों उपेक्षित रहने के कारण हमारी वह गौरवमयी शिक्षा केन्द्र तक्षशिला, जंगलों और मिट्टी के परत से ढका रहकर दीर्घ काल तक विशाल भारत के मानचित्र से प्राय: लुप्त सा हो गया था।

सन् 1921 के आस-पास जनरल कनिहंगम और सर जॉन मार्शल नामक दो पुरातत्ववेत्ता अंग्रेज़ों ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता का केन्द्र कहे जाने वाले तक्षशिला की खुदाई की तो उन्हें भूगर्भ में छिपे तक्षशिला के एक नही बल्कि तीन-तीन नगरों के अवशेषों का पता चला। ये नगर है- भीरूमन्द, सिरकप तथा सिसुख। ये सभी नगर अपने-अपने ऐतिहासिक महत्व के थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय भीरूमन्द नगर में स्थित था। इतिहासकारों का कहना है कि तक्षशिला के ये तीनों नगर विदेशियों के आक्रमणकाल में नष्ट हो गए होंगे और क्रमश: एक के बाद दूसरा नगर बसा होगा। क्योंकि प्राचीन भारत के इस समृद्धशाली नगर पर विदेशियों का अनेक बार आक्रमण हुआ था।

शेष पृष्ठ 31 पर .....

क्यों टपकता है लाहुल में आर.सी.सी. स्लैब का छत

-एन०जी० बौद्ध

सिविल इन्जीनियरिंग का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत व जटिल होता है। साधरणतय: स्ट्रकचरल इन्जीनियरिंग को ही इसका प्रधान क्षेत्र माना गया है। क्योंकि स्ट्रक्चर ही इस वैज्ञानिक युग में विकास का एक मूल तत्त्व है। जब कोई अभियन्ता किसी स्ट्रकचर के बारे में डिज़ाइन करता है तो उसे मिट्टी, वायु, धूप आदि से लेकर अन्य अनेक कारकों को गहन अध्ययन क्षेत्र में लाना पड़ता है। स्ट्रक्चर के लिए नितान्त आवश्यक चीज़ है - कन्सट्रक्शन मैटेरियल। यह उस स्ट्रक्चर की प्रकृति तथा उसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है।

स्ट्रक्चर निर्माण में कन्सट्रक्शन मैटेरियल के रूप में कंकरीट एक ऐसा पदार्थ है जिसने सिविल इन्जीनियरिंग में एक नई क्रान्ति पैदा कर दी है। सीमेंट, रेत, बजरी और पानी के मिश्रण से तैयार किया हुआ यह कंकरीट कुछ दिन के बाद एक कृत्रिम चट्टान का रूप धारण कर लेता है। यह कंकरीट केवल संपीड़ित भार (कॉम्प्रेसिव लोड) को सहन करने के लिए तैयार किए जाने वाले स्ट्रक्चर में प्रयोग किया जाता है। 20-वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब आर.सी.सी. की खोज सम्पन्न हुई तो उसके बाद इस पर लगातार अनेक शोधकार्यों के बाद सन् 1940 से इसके उपयोग को एकदम सरल व सर्वजनसुलभ बना दिया गया।

आर.सी.सी. जैसा कि नाम से विदित है *(रीइन्फोर्सड सीमेन्ट कॅन्करीट)* अर्थात जब कंकरीट को तन्य भार (टेन्साईल लोड) सहन करने के लिए किए जाने वाले स्ट्रक्चर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है तो कंकरीट के भीतर रीइन्फोर्समेंट यानि लोहे की जाली, लोहे के रेल तथा लोहे के बार आदि डाल दिए जाते हैं। यह मिश्रित ढांचा (कम्पोज़िट स्ट्रक्चर) कुछ दिन के बाद चट्टान की तरह मज़बूत हो जाता है। इसका उपयोग अब विभिन्न स्ट्रक्चर जैसे बीम, पिलर, पानी के टैंक से लेकर पुल, सुरंग, फ़्लाई-ओवर सड़क आदि अनेक स्ट्रक्चरों के लिए किया जा रहा है। अलग-अलग स्ट्रक्चर में विभिन्न प्रणाली से स्टील बार को बांधा जाता है।

लाहुल घाटी में जब से आधुनिकीकरण ने अपना कदम रखा तब से लोग अपने भवन-निर्माण में आर.सी.सी. का इस्तेमाल कर रहे हैं। भवन में आर.सी.सी. को लोग पिलर, बीम, लिन्टल, बोन्ड, सीढ़ी से लेकर फर्श तथा खुले छत के लिए स्लैब के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। जैसा कि आर.सी.सी. का कोई स्ट्रक्चर तैयार करना हो या इसका निर्माण करना हो तो तकनीकी रूप से विस्तृत जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें स्टील बार को बिछाने का तरीका, उसकी मात्रा तथा उसका साइज़ जहां सबसे महत्वपूर्ण होता है, वहीं सीमेन्ट, रेत तथा बजरी की गुणवत्ता तथा उचित अनुपाती मात्रा को जांचना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। आर.सी.सी. सट्रक्चर वाले भवन में सबसे संवेदनशील भाग सलैब व बीम होता है। इनमें ज़रा सी लापरवाही व अज्ञानता एक भारी क्षति में परिणत हो सकता है।

लाहुल घाटी में जो लोग आर.सी.सी. सलैब को सबसे ऊपर छत के रूप में इस्तेमाल करते हैं वे सभी आज पानी टपकने आदि समस्याओं से परेशान हैं। इसके निम्न तीन कारण हैं :-

1. सीमेन्ट, रेत व बजरी के अनुपाती मिश्रण में गड़बड़ी।
2. रेत और बजरी की गुणवत्ता में गड़बड़ी।
3. जटिल ज़लवायु का प्रभाव।

ऊपरलिखित एक और दो कारण तो अधिक सावध ाानी बरतने पर हल हो सकते हैं। लेकिन जटिल जलवायु (क्रिटिकल क्लाईमैटिक कन्डीशन) का प्रभाव रोकना अत्यन्त कठिन है। इसके प्रभाव में तकनीकी शब्द सबसे ट्रान्सपाईरेशन क्रिया के द्वारा यह सब होता है। शीत ऋतु में इस क्रिया से पानी टपकने की समस्या अधिक होती है। जब लोग भीतर कमरे में तन्दूर व अंगीठी आदि का प्रयोग करते हैं तो कमरा एकदम गर्म हो जाता है। गर्म कमरे में आर्द्रता अर्थात गर्म तापमान वाली नमी जब ऊपर सलैब से टकरती है तो सलैब के ऊपर बाहर का तापमान शून्य डिग्री होने पर सलैब के नीचे भीतर कमरे में सीलन उत्पन्न हो जाता है। सीलन बढ़ते-बढ़ते पानी की छोटी-छोटी बूंदों में बदल जाती है और बाद में ये बूंदें टपकने लगती हैं। जिन घरों के सलैब ग्रीष्मकाल में अत्यधिक बारिश होने पर टपकता हो तो उसका मुख्य कारण सीमेन्ट, रेत व बजरी की गुणवत्ता तथा अनुपाती मिश्रण में गड़बड़ी का होना है।

केलंग में तो यह समस्या लगभग सभी मकानों में है। क्योंकि रेत और बजरी का एकमात्र खनन स्थल है - छुरपक, जहां रेत बिल्कुल घटिया किस्म का है। इसमें 50 प्रतिशत मिट्टी व सिल्ट आदि मिला हुआ है। बजरी में भी मिट्टी व सिल्ट मौजूद है और इसका साईज़ सलैब के लिए प्रयोग होने योग्य बजरी साईज़ यानि 20 मि.मी. व डाऊन गेज के मुताबिक नहीं है।

अत्यन्त संवेदनशील आर.सी.सी. स्ट्रक्चर में इंजीनियर्ज़ सर्वप्रथम रेत व बजरी को बैचिंग प्लांट के बाद वाशिंग प्लांट में डाल देते हैं। यानि रेत व बजरी को धूल, मिट्टी व सिल्ट आदि से मुक्त करके ही इसका प्रयोग करते हैं। इस हिसाब से लाहुल में लोग आर.सी.सी. का मज़ाक उड़ा रहे हैं।

इसलिए एक सिविल अभियन्ता होने के नाते मेरा लाहुल वासियों को एक मैत्रीपूर्ण सुझाव है कि आर.सी.सी. को किसी तकनीकी सलाहकार के परामर्शानुसार ही प्रयोग करें और हो सके तो छत के रूप में इसका प्रयोग कम करें।

अनुकरण की मानसिकता और विकृत होती बोलियां

-अजेय

लोकभाषा पर सुरेश विद्यार्थी का लेख- 'लाहुल की बोलियां विलुप्ति की ओर' पढ़ने के बाद मुझे इस विषय पर कुछ टिप्पणी करने की प्रेरणा मिली है। लेख के अन्त में लेखक द्वारा उठाए गए प्रश्न निश्चय ही गम्भीर एवं चिन्तनीय हैं। परन्तु कुछ बिन्दुओं पर मैं लेखक से असहमत हूं। कारण आगे स्पष्ट किए गए हैं।

सांस्कृतिक विरासतों के रूप में अपनी बोलियों को बचाए रखने का प्रयास आवश्यक है लेकिन विडम्बना यह है कि किसी भी भाषा या बोली का अपरिवर्तनशील रहना असम्भव है। भाषा के विकास अथवा ह्रास (भाषा विज्ञान में दोनों चीज़ें एक ही मानी जाती हैं) के अपने प्राकृतिक नियम होते हैं। मानव निर्मित मानकों और मानदण्डों का पालन करना भाषा का स्वभाव नहीं होता। फिर भी कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानसिक घटक होते हैं जो भाषा के विकास को निर्देशित करते हैं, जिनकी ओर सुरेश ने अपने लेख में संकेत कर दिया है। जहां तक लाहुली बोलियों के लुप्त हो जाने की बात है, मुझे फिलहाल ऐसा कोई खतरा नज़र नहीं आ रहा। हां, अत्यधिक परिवर्तन के कारण हमारी बोलियां विकृत हो रही हैं यह चिन्ता का विषय है।

इस लेख में सुरेश द्वारा उठाए गए मुद्दों और समस्याओं को मैं अपने ढंग से प्रस्तुत करने जा रहा हूं। पाठकों से मेरी विनती है कि इन विषयों पर मुझ से सहमति या असहमति दर्शाने वाली जो भी सूचनाएं उन के पास हों, चन्द्रताल के माध्यम से मुझ तक पहुंचाएं, ताकि संवाद स्थापित हो सके और हम कुछ तर्क संगत निष्कर्षों पर पहुंचें। मैं अपने सीमित ज्ञान के चलते इन विषयों पर दावे के साथ कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि मैं भी लाहुल की उसी पीढ़ी से सम्बन्ध रखता हूं जो अपनी जड़ों से लगभग कट चुकी है।

जैसा कि सुरेश ने स्वीकार किया है "हमारी बोलियों का शब्द-भंडार उतना समृद्ध नहीं है।" तो इस स्थिति में मैं समझता हूं कि जहां हमें शब्दों की कमी महसूस हो वहां किसी भी भाषा से कोई आसान शब्द उधार लेने में दिक्कत नहीं पेश आनी चाहिए। अंग्रेज़ी भाषा इसी तरह समृद्ध हुई है। मसलन लेखक ने खिलाना क्रिया का जो उदाहरण दिया है उसी को लीजिए। पट्टनी बोली में (जहां तक मैं जानता हूं) खिलाना-पिलाना जैसी क्रियाओं के लिए कोई शब्द नहीं है, और यह अकारण नहीं। यह सब हम "बाहरी दुनियां" से सीखे हैं। "बाहरी दुनिया" से संपर्क से पहले हम लाहुल के कबायली "खाना-पीना" (ज़ेई-तुङमी) तथा "मांगना, देना" (पेट्रि, रंड्रि) क्रियाओं से परिचित थे। अब चूंकि पंजाबियों और शेष हिन्दुस्तानियों की तरह हम भी "खिलाने-पिलाने" में विश्वास करने लगे हैं तो इन शब्दों को उधार लेना अनिवार्य हो गया है। अत: इस तरह के उधार चिन्तनीय नहीं। जिस रोज़ "खिलाने-पिलाने" वाली जीवन शैली को नकारने की हिम्मत हम में पैदा हो जाए शब्द स्वत: हमारे शब्दकोश से गायब हो जाएगा।

हां, अपने शब्द होते हुए भी महज़ अनुकरण के लिए उधार लेने की प्रवृत्ति से बाज़ आना चाहिए। "मिलाना", "घूमना" आदि हिन्दी क्रियाओं (जिन के पट्टनी रूप विद्यमान हैं) का प्रयोग सचमुच अनावश्यक है। यथा -

हिन्दी क्रिया	English	पट्टनी क्रिया	वाक्य
1. मिलाना	क. to mix	च्वची़	पानुरिङ् ती च्वची़ लेपा (पट्टनी)
			पानुरिङ् ती मिलाचि़ लेपा (हिन्दी)
	ख. to	दोई लहज़ी	केई गे मंत्रीरङ् दोई ल्होना? (पट्टनी)
	introduce	(ल्हेई)	केई गे मंत्रीरङ् मिलापोना? (हिन्दी)
2. घूमना	क. To spin,	किरज़ि़	तकुड़ि़ किरज़ि़ माथोस (पट्टनी)
	revolve		तकुड़ि़ घुमिक्पि माथोस (हिन्दी)
	To walk, stroll,	जोई	दु बजारङ् जोई इल्जा (पट्टनी)
	wander, travel		दु बजारङ् घुमिक्पि इल्जा (हिन्दी)

मुझे याद पड़ता है एक पांच वर्षीय बच्चे से यह पूछने पर कि "बंटू क्रिकेट ग्होज़ि़ अपतना?" बच्चे ने रुआंसा होकर उत्तर दिया था "मम्मीज़ि़ म भेजिक्च़ा।" लाहुल के सभी "मम्मियों" और "पापाओं" को चाहिए कि वे अपने बंटुओं और नीटुओं को "भेजिक्च़ा" की बजाए "च़रच़ा" क्रिया का प्रयोग करना सिखाएं। (पहले

स्वयं सीखें) क्योंकि एक तो यह अपनी बोली का शब्द है दूसरे उच्चारण की दृष्टि से हिन्दी रूप से कहीं अधिक सरल है।

बोली में परिवर्तन के जितने भी उदाहरण लेखक ने दिए है कमोवेश सभी के कारण वैज्ञानिक हैं। कहीं परिवर्तन का कारण उच्चारण सौख्य है, कहीं अर्थ विकास है, कहीं वस्तुओं, अवधारणाओं का अप्रचलित या प्रचलित हो जाना है। ये क्योंकि प्राकृतिक कारक हैं, इन के आगे हम विवश हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रक्रिया को "भाषा का विकास" कहते हैं तथा इस से किसी भाषा या बोली के लुप्त होने का कोई खतरा नहीं पैदा होता।

पाश्चात्य, पंजाबी, हिन्दुस्तानी शैलियों के अनुकरण के कारण जो बदलाव हमारी बोलियों में आ रहें हैं उन्हें हम रोक सकते हैं, क्योंकि हमारे पास विकल्प हैं। जैसे हिन्दी क्रियाओं का प्रयोग, हिन्दी और पंजाबी वाक्य विन्यास का प्रयोग, पंजाबी, पहाड़ी तथा अमरीकी स्वराघातों/बलाघातों का प्रयोग, पंजाबी तथा पहाड़ी उच्चारण आदि।

इन बातों पर विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि सुरेश द्वारा उठाए गए प्रश्न प्रासंगिक हैं। समस्याएं सार्थक है लेकिन निदान के लिए समस्याओं की तह तक पहुंचना हमारा सामूहिक कर्त्तव्य है। समय आ गया है कि इस कर्त्तव्य को निभाने के लिए हम जुट जाएं।

नि:सन्देह लाहुली बोलियों को बाहरी आक्रमणों से बचाना ज़रूरी हो गया है। परिवर्तन अपरिहार्य है लेकिन जब तक विवेक साथ देता है आदमी को चाहिए कि यथास्थितिवाद से बचे और परिवेश में व्याप्त हो रही विकृतियों को दूर करने के उपाय ढूंढता रहे।

किसी भी बोली को संरक्षित करने का सबसे सरल उपाय यह है कि उसे लिपिबद्ध करके उस का एक मानक व्याकरण खड़ा कर दिया जाए। लेकिन यह नकारात्मक रवैया है। इससे आप भाषा का रूप बचा पाएंगे, आत्मा नहीं। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है भाषा व्याकरण का बंधन नहीं मानती। (यद्यपि बिद्वज्जन प्रयास करते हैं) जिस भाषा पर नियमों का बंधन कड़ा होता है वह मर जाती है। उदाहरणार्थ - संस्कृत, ग्रीक, आदि क्लासिकल भाषाएं। जिस भाषा पर बंधन ढीले हों वह जीवन्त, समृद्ध और लोकप्रिय होती है - जैसे कि अंग्रेज़ी।

साहित्य रचना एक अन्य विकल्प हो सकता है। हमारी बोलियों में विकृति का एक कारण इन का अलिखित होना भी है। चन्द्रताल के माध्यम से हमें अधिकाधिक लोक बोलियों में साहित्य रचना को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस का एक लाभ यह होगा कि आने वाली पीढ़ियां लाहुल में भाषाई परिवर्तनों के प्रवृत्तियों (Trends) से अवगत होकर इस विषय में गंभीर शोध कार्य कर पाएंगे। क्योंकि मौखिक बोलियों में इन प्रवृत्तियों को पकड़ पाना दुष्कर है।

अंतत: इस संबंध में किए गए हमारे सभी प्रयास निरर्थक होंगे जब तक कि हम अपने समुदाय के अन्दर एक सामाजिक चेतना विकसित नहीं कर पाएंगे। गम्भीर चिन्तन करने पर मालूम होता है कि लाहुल की बोलियों में इतने आकस्मिक और तीव्र बदलाव का कारण सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक है। अभी तक हम अपने कौम, अपने इलाके की संस्कृति को मन से इज्ज़त दे सकने में असमर्थ हैं, ज़रूरत है एक सांस्कृतिक जागरण की। सुरेश का कहना सही है कि "भाषाई परिवर्तन समाजिक विकास को प्रतिबिम्बित करता है"। अब पट्टनी भाषा का ऊपर वर्णित स्वरूप हमारे विकसित समाज का कौन सा रूप प्रतिबिंबित कर रहा है इस का निर्णय लाहुल का पाठक स्वयं करे) भाषा की ये विकृतियां तो मात्र एक अभिव्यक्ति हैं उस ट्यूमर की जो हमारे समाज को निगल रहा है। अगर इस ट्यूमर का इलाज हो पाए तो भाषा, बोली सब कुछ सुधर जाएगा। और यह ट्यूमर है अंधानुकरण की प्रवृत्ति। जब तक हम अपनी जातीय अस्मिता के प्रति जागरूक होकर सोचना न शुरू करें, हमारी सांस्कृतिक विरासतों का यही हश्र होगा।

आर्य अवलोकितेश्वर का बीज मन्त्र -

"ॐ मणि पद्मे हूँ।"

ऐ पद्मासन में स्थित मणि (आर्य अवलोकितेश्वर) तेरी सिद्धि हो!

शत्पा तथा पन्था (लोकोक्तियां)

-आचार्य प्रेम सिंह शौण्डा

कहावतें, मुहावरे और पहेलियां लोक-साहित्य का अभिन्न अंग हैं और लोक-साहित्य के विकास की प्रारम्भिक अवस्था को दर्शाती हैं। इन में साहित्य का मूल है, बीज है। भाव-व्यञ्जना, मार्मिकता, व्यापकता और गम्भीरता के गुण लोकोक्ति आदि में मौजूद हैं। इसी क्रम में दूसरे स्थान पर भाषाचातुर्य, उक्तिवैचित्र्य और प्रभावोत्पादकता भी हैं।

काव्यशास्त्र में सुन्दर उक्तियों को सूक्तियां या सुभाषित कहा है। ये ही लोक साहित्य में लाकोक्तियों अथवा कहावतों के नाम से प्रसिद्व हुई।

मनुष्य ने युग-युगों से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया, अपने आस पास की घटनाओं के परिणामों को देखा, सुना और अनुभव किया उस की अभिव्यक्ति कम से कम शब्दों में और अधिक से अधिक अर्थ गहराइयों में की। वे शब्दावलियां लोकोक्तियां कहलाई। ये लोकोक्तियां देखने और सुनने में छोटी; पर प्रभाव में बहुत गम्भीर और व्यापक होती हैं। व्यापकता में जैसे ''गागर में सागर'' सदृश है। संक्षिप्त सूत्र-प्रणाली या समासशैली में हैं। विद्वानों ने लोकोक्तियों को ग्रामीणों का नीतिशास्त्र कहा है। प्राय: कहावतें आदि नीतिपरक, उपदेशात्मक शिक्षाप्रद एवं वचनचातुर्य में मनोरञ्जनात्मक होतीं हैं।

मुहावरों और कहावतों में अन्तर है। मुहावरा वाक्य का एक अंश होता है। उस का स्वतन्त्र रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता है। कहावतें अपने आप में पूर्ण वाक्य होतीं हैं। स्वतन्त्र रूप से उन का प्रयोग होता है। वे अपना स्वतन्त्र अर्थ रखती हैं। किसी कथन की पुष्टि के लिए उदाहरण के रूप में अलग से उन का व्यवहार होता है। मुहावरा गद्य में, लोकोक्तियां गद्य और पद्य दोनों में उपलब्ध होतीं हैं।

लाहुल में कहावतों के लिए शत्पा या पन्था शब्द का प्रयोग हुआ है। जिस का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ऐसा हो सकता है कि शचि (कथन या प्रवचन) जिस में किया जाने पा (वाला) शचि + पा = शत्पा कहावत की व्युत्पत्ति के समान है। लाहुल में प्रचलित लोकोक्तियां अधिकतर नसीयत देने वाली हैं। सीख देना सही रास्ता दिखाना होता है, इस भाव को लेकर पन्था कहा है। पन्था संस्कृत का शब्द है, जिसं का अर्थ रास्ता है। जिस (रास्ता) के द्वारा सीख दी जाए, वही पन्था कहलाया। पट्टनी में संस्कृत के बहुत से शब्द अब भी उसी रूप में हैं, जहां से छूट कर यहीं रह गये।

पट्टन की बोली में, भोटी भाषा में और पहाड़ी हिन्दी में शत्पा या पन्था न्यूनाधिक संख्या में समान रूप से उपलब्ध हैं। इन्हें संकलित करने की आवश्यकता है। संगृहीत में से कुछ शत्पा (पन्था) दिग्दर्शन मात्र के लिए यहां उपस्थित किये जाते हैं।

तिन दल्जे शाहरिङ टेशी।

यह चार शब्दों वाला एक वाक्य है। जिस का अर्थ है - ''नाखून अलग होने पर मांस में पीड़ा होती है।'' इस का सामान्य अर्थ का ज्ञान शब्द की अभिधा शक्ति से होता है। पर जिस प्रकरण में शत्पा कहा गया है, वह मनुष्य के बहुत संवेदनशील सम्बन्ध को लेकर है। शत्पा का सामान्य से अलग अन्य भी अर्थ झलकता है। व्यञ्जित होता है। इस व्यञ्जित होने को अर्थ व्यञ्जना या भावव्यञ्जना कहते हैं। साहित्य का यही उत्कृष्ट तत्व है। खून के रिश्ते वालों में जब कटुता या वैमनस्य इस सीमा तक बढ़ जाता है कि सम्बन्धों में संवेदनशीलता ही नहीं रहती है तब सम्बन्ध जड़ सा हो जाता है। वे एक दूसरे के लिए बेकार हो जाते हैं।

परन्तु उन में से कोई एक असह्य पीड़ा भोगता है या विकट विपत्ति के जाल में फंसता है तो दूसरा संवेदनशील हो जाता है या सहायता के लिए आगे आता है। ऐसी स्थिति में "तिन दल्जे शाहरिङ टेशी" शत्पा का व्यवहार होता है। इस संसार से उठ जाने पर जब खून के रिश्ते वालों का दु:ख अनुभव करने पर तो यह शत्पा और भी अधिक गहरा हो जाता है।

अर्थापति अलंकार से यह भी एक और अर्थ की प्रतीति होती है कि तेज चाकू से नाखून को काटने पर भी मांस में पीड़ा नहीं होती है तो मांस के लिए नाखून जड़ है, संवेदनशील नहीं। जब नाखून मूल से उखड़ जाता है तब जा कर मांस में पीड़ा की अनुभूति होती है। मनुष्य का खून का रिश्ता ही मूल और निकटतम है। जब नाखून ही उखड़ जाता है, अर्थात् व्यक्ति मर जाता है, तब सम्बन्धी को पीड़ा होती है। ऐसी अवस्था में उक्त शत्पा का प्रयोग सही लगता है। पर लोग व्यवहार की मान्य और बलवान है। इस लिए जिस-जिस स्थिति में शत्पा व्यवहृत होता है, सही है।

चार शब्दों वाली छोटी सी यह कहावत (शत्पा) मानव सम्बन्धों की बड़ी घटना की गम्भीरता, घटना से

उठने वाली हृदय की मार्मिकता और व्यापकता को समेटे हुई है, यही आश्चर्यजनक चमत्कार है। इस में दो घटनाओं का सांग समानता है सांग रूपक सा है।

''खिमें युल्ला ग्वचे पोन्वो''

शब्दार्थ -

(खिमें) कुत्ते के वगैर (युल्ला) गांव में (ग्वचे) गीदड़ (पोन्वो) हाकम होता है। सामान्य अर्थ में यह तात्पर्य है कि जब कुत्ता गांव में होता है तो गीदड़ कुछ महत्व नहीं रखता है। कुत्ता बलवान है और गीदड़ कमज़ोर है, डरता है।

घर, गांव और किसी भी व्यवस्था में योग्य, शक्तिशाली और बुद्धिमान व्यक्ति नहीं होता है। तब ऐरे-गेरे अयोग्य के हाथ में अधिकार चला जाता है जिस से कई तरह की अव्यवस्था और परेशानियां पैदा हो जाती है। ऐसे समय उक्त शत्पा का व्यवहार होता है।

''घरे रि सिह्या बणे रि कुत्ता''

शब्दार्थ -

(घरे रि) घर में सिंह (वणे रि) वन में कुत्ता यह बिल्कुल स्पष्ट ही है। कुत्ता अपने स्वामी के घर में होता है तो बहुत ज़ोर से बेखटके से भौकता है। अर्थात् शेर बन जाता है। पर ज्यों ही घर से बाहर हो जाता है और जंगल तक निकल जाता है तो डर के मारे भौकता ही नहीं, चुप कर रहता है। मानवीय जीवन में इस का तात्पर्य इस प्रकार है - बाहर सभा और समाज में औचित्य और अनौचित्य को जो व्यक्ति कह नहीं सकता है। घर में ही जिस किसी तरह दबदबा बनाए रखता है। तब कह देते हैं कि ''घरे रि सिह्या वणे रि कुत्ता"। ''खारी रिङ् ढाड़ा मद् री रिङ् ढाड़ा''।

इस शत्पा का अर्थ करने से पूर्व खारी और रि शब्द के अर्थ को स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

अनाज नापने के बर्तन को पत्था कहते हैं। जिसे में आधा किलो के लगभग अनाज समाता है। इसे रि कहते हैं। बीस (20) पत्था अनाज को ''पिड़ा'' कहते हैं। और बीस (20) पिड़ा को खारी। दूसरे प्रकार से चार सौ (400) पत्थे को खारी कहते हैं। (खारी रिङ) चार सौ (400) पत्था अनाज भण्डार होने पर (ढाड़ा) खर्चने की ठीक व्यवस्था (मद्) नहीं की है तो अब बचे हुए (री रिङ) एक पत्था अनाज पर (ढाड़ा) व्यवस्था किस काम की? अदूरदर्शिता के कारण योजनाबद्ध कार्य न करना तथा उसका दुष्परिणाम भोगना इस से शिक्षा मिलती है।

5. ''पट ग्वशे काकलो फ्या''

शब्दार्थ (पट) पल्ला चौड़ा पत्थर के (ग्वशे) फटने पर या दो टुकड़े होने पर (काकलो) छिपकली का (फ्या) माथा अर्थात् भाग्य चमका।

इस शत्पा का प्रचलन ऐसी स्थिति में होता है जब कर्म करने का फल कर्त्ता को न मिल कर किसी और को मिल जाए। अथवा हकदार को उसका हिस्सा न मिल कर किन्हीं कारणों से किसी और को मिल जाए, तब कहते है कि ''पठ ग्वशे काकलो फ्या'' जैसे हिन्दी के विडम्बना शब्द का स्पष्ट अर्थ उपरोक्त प्रकार की स्थिति में होता है।

वास्तव में इस का व्यवहार विपरीत स्थिति में भी हानि की अपेक्षा लाभ मिलने की भाव स्थिति पर होना चाहिए। छिपकली के लिए चौड़े पतले पत्थर जिस में वह बैठी है; का फटना हानिकारक है। पर प्रहार करने वाले का पत्थर छिपकली पर न लग कर पतले पत्थर पर लगते ही वह फट जाता है। फटते ही उस के बीच से छिपकली अन्दर घुस कर बच जाती है; यही उस का भाग्य है। लाभ ही हुआ है। जैसे हिन्दी की कहावत ''कुबड़े को लात पर आई'' है। कुबड़े को लात खाना हानिकारक है। पर वह लात खा कर सीधा हो गया, कुबड़ा न रहा। यह उसे लाभ मिला। यदि इस तरह की स्थिति में प्रयोग नहीं किया जा सकता है तो प्रश्न उठता है कि छिपकली को पत्थर फटने से किस तरह का लाभ हुआ। पत्थर का फटना और लाभ प्राप्त होना इस घटना का सामञ्जस्य कैसा हुआ!

6. ''अगड़े खाणा गगड़े जाणा''

शब्दार्थ -

(अगड़े) अग्रे, अधिक या असामान्य जीर्ण करने की शक्ति से बाहर (खाणा) खाना (गगड़े) पत्थरों के ढेर पर (जाणा) जाना होता है।

पचाने के सामर्थ्य से अधिक भोजन खाने पर कष्ट होता है। जुलाब भी लगते हैं, ज़ोर से तरल रूप में मल निकलता है। तब मल त्यागने के लिए पत्थरों के ढेर पर जा कर बैठना पड़ता है।

आदमी अपनी आवश्यकता के अनुसार धन बटोरता है। उसका उपयोग सही स्थान पर करता है। तृष्णा के कारण जब अधिक संचय निरन्तर करता रहता है तब वह संगृहीत धन व्यर्थ ही या उपयोग किए बिना नष्ट

हो जाता है।

7. "रङ्ज़ङ् सा तर्च़ा कारो उम् दक्पी"

शब्दार्थ –

(रङ्ज़ङ्) घोड़े के (सा) साथ (तर्च़ा) भार उठाने का अनुकरण कर या अनुसरण कर (कारो) गधे की (उम्) कमर (दक्पी) टूटती है।

अर्थात् समान सामर्थ्य वालों का आपस में मुकाबला होता है। अनुकरण होता है। असमान सामर्थ्य वालों का नहीं। अन्यथा कमज़ोर को हानि उठानी पड़ती है।

"हाड़ी उ रोष कुदाली बी"।

(हाड़ी उ) हलवाहक के ऊपर (रोष) गुस्सा (कुदाली बी) कुदाल पर निकालता है।

खेत जोताई में हल वाहक का काम मुख्य होता है। इस तरह हल वाहक भी मुख्य कार्य कर्त्ता है। हल चलात समय खेत का कोई किनारा बिना जोते रह जाता है तो मिट्टी के ढेलों को तोड़ने के लिए कुदाली लिये दूसरे लोग कुदाल से खोदते है। सख्त ज़मीन खोदना जब कठिन हो जाता है तब वह व्यक्ति अपनी कुदाली पर गुस्सा करता है। दोष तो हलवाहक का है। उसे कह नहीं सकता है क्योंकि वह मुख्य भूमिका निभाता है। इसलिए यह कहना भी है कि "समरथ को दोष नहीं गोसाई"। शत्पा की रचना करना कठिन है।

लोकोक्तियों की रचना प्राय: घटनाओं को आधार बना कर होती है। रचना में शब्द और अर्थ का सम्पादन इस प्रकार किया जाता है जिस से वे शाश्वत् अभिव्यक्ति बन जाए। इस लिए इन की रचना करना सरल काम नहीं है। यह समय अपेक्षित साधना है। इसकी तुलना में पहेलियों की रचना करना सरल है। क्योंकि बिन्दुमात्र विषयवस्तु, लघुतरी शब्दावली और क्षण भर में अर्थ का उजागर करना होता है। गोपनीय को जानने के लिए अन्यत्र पदार्थ पर उन दोनों का अधिाक से अधिक सादृश्य का निरूपण करना होता है। व्यक्त कथन में शब्दों के आयोजन-चातुर्य से तथा कल्पना से कम से कम शब्दों को इस तरह लिख या कह दिया जाए कि उस के अर्थ में पहले तो विसंगति पैदा हो जाए। तत्पश्चात् कोई न कोई संकेत गोपनीय कथन तक पहुंचा सके। यह संकेत, प्रतिबिम्ब के रूप में, प्रतीक रूप में शब्द या अर्थ के श्लेश के रूप में मिल जाता है तदनन्तर विसंगति के परिहार करने पर और सही संकेत को पकड़ने पर गोपनीय का अर्थ अग्नि-स्फुलिंग (चिन्गारी) के समान सहसा चमक उठता है। इस प्रकार क्षणिक अर्थ-स्फुरण से सुनने वाले आह्लाद से चिहुंक उठते है। क्षणिक आह्लाद और करना इसका चरम लक्ष्य है मनोरञ्जन का यह खेल लोगों में सदा लोकप्रिय रहा है। रचना का निरन्तर अभ्यास बुद्धि को कल्पना-शक्ति से उर्वरा कर देता है। चुस्त एवं हृदयस्पर्शी चुटेली शब्दावली के आयोजन की दक्षता मिलती है। सब से अधिक लाभ तो यह है कि अप्रस्तुत से प्रस्तुत मे अर्थ व्यञ्जित करना, इसे आर्थी-व्यञ्जना कहते है। क्योंकि साहित्य सृजन में भाव व्यञ्जना प्रमुख तत्व है। इसका मूल रूप या बीज रूप लोकोक्तियों और पहेलियों में मौजूद रहता है। सही अर्थों में उपर्युक्त क्षमता वाला व्यक्ति ही लेखन कार्य में प्रवेश पा सकता है।

....पृष्ठ 25 का शेष

बुद्ध की वह वाणी कि संसार परिवर्तनशील है, वह कभी यथा स्थिति में नहीं रहता। सन् 1947 अगस्त महीने भारत माता के वक्षस्थल पर एक चीरा खींच कर पाकिस्तान का निर्माण हुआ। भारत वर्ष के इतिहास में यह सब से दु:खद घटना थी। उस भारतीय संस्कृति और सभ्यता का वह स्रोत पाकिस्तान के हिस्से में चला गया, परन्तु भारत का जन-मानस तक्षशिला विश्वविद्यालय की इस गौरवशाली स्मृति को कभी भी भूल नहीं सकता।

पादटिप्पणियां –

1. प्रो. सोहन लाल शर्मा द्वारा विरचित, अतीत-स्मृतियां, पृ. 44 के अनुसार भारत में नाना का नाम युधजित था;
2. बुद्धचर्य्या, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 279;
3. जातक प्रथाम भाग, पृ. 413, 524; जातक तृतीय भाग, पृ. 287;
4. तिलमुट्ठि जातक;
5. जातक अट्ठकथा, भिक्षु धर्मरक्षित, पृ. 256;
6. बुद्धचर्य्या, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 280
7. मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ. 60.

लाहुल की नारी : चिर उपेक्षिता

- सुश्री फुन्चोग डोलमा

प्राचीन काल से भारत-वर्ष में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया गया है तथा पुत्रों की इस प्रतिष्ठा को हमारे प्राचीन ग्रन्थों तथा पुरुष प्रधान समाज ने और भी बढ़ावा दिया है। परम्परा अनुसार पुत्री को पराया धन माना जाता है तथा वह वंश की रक्षा करने के स्थान पर स्वयं वंश-रक्षिता मानी जाती है। इसलिए नारी दीन-हीन समझी जाती रही है। किन्तु आधुनिक युग में नारियां किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं हैं। वे पुरुषों के समान शिक्षा भी प्राप्त कर रही हैं तथा पारिवारिक दायित्व निभाने में भी पीछे नहीं रह रही हैं।

यह ठीक है कि 15-20 वर्षों से हमारे लाहुल में भी प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति हुई है तथा हम सब उन तौर-तरीकों को अपनाने की होड़ में लगे हैं जिनसे हम आधुनिक कहलाएं। हमारा पहनावा, हमारा खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल तथा सुख-सुविधाएं आधुनिकता में रंगे तो हुए हैं, परन्तु हमारी मानसिकता विशेषकर नारी के प्रति वहीं की वहीं है। लड़की को जन्म से लेकर ही हीन समझा जाता है। जब बेटा होता है तो खुशियां मनाई जाती हैं। रिश्तेदार, गांव वाले सभी बेटे के जन्म पर माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों को बधाई देने के लिए शराब, दूध तथा फूल आदि लेकर आते हैं। बेटी के जन्म पर मां भी मुंह लटकाकर बैठ जाती है। जो नारी पुत्र को जन्म देती है, हाड़-मास के लोथड़े को चलने लायक बनाती है। पाल-पोस कर जब बड़ा कर देती है तो उसी नारी का दर्जा छोटा हो जाता है। नारी यदि साठ साल की हो तो भी उन्हें दस वर्ष के लड़के से नीचे बिठाया जाता है। यह तो सब को विदित है कि लाहुल में रहने वाली अधिकतर नारियां न केवल घरों को संभालती है बल्कि खेती का लगभग सारा भार भी उन्हीं के कन्धों पर है। ये स्त्रियां साठ-साठ किलो की मटर की बोरियां आसानी से उठा लेती हैं किन्तु इतना होते हुए भी वे हीन समझी जाती हैं। जब भी घर के विषय में कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना होता है, 'मेचमि रे चुप्पे तोईं, केचे चि ञेञि' (=औरत लोग चुप बैठो, तुम्हें क्या पता लगना) कहा जाता है।

नारी चाहे शिक्षित हो या **अशिक्षित**, उसे पग-पग पर नीचा दिखाया जाता है। इस का उदाहरण है अभी हाल में अर्थात 26 फरवरी को लाहुल-**स्पीति** छात्र परिषद (LSSA) का वार्षिक समारोह। इस समारोह में प्राचार्य महोदय सहित हम सब लाहुली प्राध्यापकों को भी आमान्त्रित किया गया। किन्तु नारी होने के कारण दरवाज़े में ही अपने ही छात्र-छात्राओं द्वारा अपमानित होना पड़ा। जिन छात्र-छात्राओं को इतने सालों तक समानता का पाठ पढ़ाना चाहा था, वही हमें अपनी औकात दिखा गए। सारे प्राध्यापकों को दरवाज़े पर 'खतग' पेश किया गया किन्तु हम दो प्राध्यापिकाओं (सुजाता और मैं) को उस सम्मान से वंचित रखा गया। पहले तो सोचा कि शायद खतग समाप्त हो गया होगा, कोई बात नहीं! किन्तु ऐसी बात नहीं थी, कुछ समय उपरान्त जब और भी प्राध्यापक अन्दर आए तो उन्हें भी वह सम्मान प्रदान किया गया। तब हमें अनुभव हुआ कि वास्तविकता क्या थी? विडम्बना की बात तो यह थी कि दरवाज़े पर स्वागत करने वाली भी छात्राएं ही थीं। हमारा तो उसी समय उठ जाने का मन कर रहा था लेकिन प्राचार्य महोदय के आग्रह के कारण हम वहां से उठ भी नहीं सकती थीं।

इस तरह के व्यवहार के लिए मैं केवल पुरुष वर्ग को दोषी नहीं ठहराती। मैं तो नारी को भी, बल्कि पुरुष से अधिक नारी को दोषी समझती हूं। अगर नारी स्वयं ही नारी वर्ग का सम्मान न करे, तो भला पुरुष वर्ग से हम क्या उम्मीद कर सकते हैं? नारी को स्वयं समझना चाहिए कि वह दीन-हीन बेचारी नहीं है, उस का अपना अलग अस्तित्व है। वही अच्छे परिवार का तथा समाज का निर्माण कर सकती है। क्योंकि कहा भी गया है कि "अगर पुरुष तथा स्त्री में से किसी एक को शिक्षित किया जाना हो तो नारी को शिक्षित करना होगा। क्योंकि पुरुष को शिक्षा दे कर केवल एक ही व्यक्ति को शिक्षित किया जाता है जबकि नारी को शिक्षित करके पूरे परिवार को शिक्षित किया जा सकता है।" अगर मां बचपन से ही बेटा या बेटी में भेद करना छोड़ दे तथा दोनों में अच्छे संस्कार डालने का प्रयास करे तो निश्चय ही समाज में से असमानता का अन्त हो जाएगा तथा आने वाली पीढ़ी की इस तरह की संकुचित मानसिकता को समाप्त किया जा सकेगा।

हॉस्पिटल

- डा० दयानन्द गौतम

"चाय-चाय" की कर्कश आवाज से फिर कमल की नींद टूटी। उसने हल्के से आंखें खोलीं और देखा बहादुर केतली और ऊंची कांच के गिलासों की ढेरी लिए हर एक बिस्तर तक पहुंच कर पूछता है।

"भाई जी चाय"

"माता जी चाय"

"छोटू चाय"

सिटी हॉस्पिटल के जनरल वार्ड में यह सुबह का दृश्य आम ही था। बहादुर कौन था वह? पिछले दस वर्षा से यहां कन्टीन वाले के साथ 200/- रु. में काम करता था। हॉस्पिटल में होने वाले सभी असहाय बीमारों की सेवा करता। कई बार तो मुफ्त में ही चाय-ब्रैड खिलाता-पिलाता था। हिन्दी भी ठीक से जानता नहीं। कहता छः साल का इण्डिया आया था, बस तभी से यही हॉस्पिटल उस का घर है और यहां होने वाले बीमार उस के परिवार के सदस्य।

"हरामी कहीं के"

"पता नहीं कहां-कहां से आ जाते है।"

"कितने गन्दे लोग आते है यहां, सफाई का ख्याल भी नहीं रखते।"

लगता था कजली जमादारन आई है। कजली का घरवाला रोज दारू पीता था। यहीं का सफाई कर्मचारी है। पूरी तन्ख्वाह दारू में उड़ाता। कजली को पीटता। कजली दुःखी होते हुए भी कभी जिंदगी में न घबराई। बच्चे पाले, पढ़ाए-लिखाए। लोगों को कहते सुना है कि इसी वर्ष कजली का बड़ा बेटा डॉक्टरी पूरा करने वाला है।

सभी मरीज सहम जाते थे उसकी आवाज़ सुनते ही। मरीज़ क्या सभी रिश्तेदार, दोस्त या फिर मरीज़ों को देखने आए आगंतुक भी। बाहर से कड़वा बोलने वाली कजली कभी-कभी बातों में अन्दर से सहृदय व कोमल भी लगती।

कमल ने आंखें मलते-मलते उठते ही अपनी बाई दीवार पर टंगे विज्ञापन कलैंडर की 22 तारीख को क्रॉस किया और धीरे से होंठ हिलाते हुए कहा-बाईसवां दिन। करवट बदली। सभी पर नज़र दौड़ाई। कमल की सभी मरीजों से इतने ही दिनों की दोस्ती थी।

राजू की टांग में दर्द है। दीनू के पीठ पर फोड़ा है। फौजी भाई की पिंडली में आपरेशन हुआ है। गुजर की घरवाली के कानों में चोट लगी है। छोटू का स्कूल की ब्लैकबोर्ड गिरने से हाथ टूटा है। दिनेश की कूहनी कराटे डैमों से खिसक गई है। धनों दादी की पीठ में पत्थर गिरने से घाव है। और भी इसी तरह के मरीज़ों का लेखा-जोखा है कमल के पास।

"बैड नं. 15 जैन्टा देना।"

"सीरिंज है क्या?"

"बैड नं. 16 ऐसीटोन लाओ।"

नर्सें आती हैं- नपी-तुली ड्रैस में कभी-कभी आकर्षक भी लगती। सूईयों की भभक भरी बू के साथ नर्सों के कास्मैटिक्स की खुशबू भी चारों ओर फैलती जाती। पुराने मरीज़ कहते - बाकी सब ठीक, नर्सों से मुंह न लगाना, इन्हें खासा अनुभव है झगड़ने का। कई बार तो मरीज़ों को खूब डांटती भी है। फिर भी मरीज़ बरबस मुस्करा कर मन ही मन अपना दर्द छिपाते रहते है।

रात भर कमल सो नहीं पाया था। पूरे वार्ड में एक अलग सा सन्नाटा था। ज़िन्दगी और मौत के बीच जूझने का सन्नाटा। राजू, छोटू, फौजी, दीनू सभी अपनी पीड़ाओं से कराहते रहते थे पर आज यह दर्द।

राजू कहता था उसे एक बार भूंड ने काट खाया था, वह बहुत रोया था। दीनू ने कहा - यार मैंने जब बिना सुन्न किए गांव के बूढ़े

दादी का जर्जर बूढ़ा शरीर, गला रूंधा हुआ। न चीख सकती थी, न तड़प सकती थी। आंखें छत की तरफ आधी सफेद किए हुए थी। सभी कहते अब दादी बचेगी नहीं। मरीज तो सारे थे पर अब सभी सोचते असली मरीज तो दादी है।

सूरतू से अपनी दाढ़ निकलवाई थी तो लग रहा था जैसे सिर धड़ से अलग हो रहा है, दर्द इतना था, मैं रो न पाया था।

फौजी भाई ने अपनी कथा सुनाई थी, मेरे साथ सात और जवान थे और 1971 की लड़ाई में 35 पाकिस्तानियों को मार गिराया था हमने। एक गोली सीधी मेरी पिंडली में घुसी थी। रोना तो क्या, दर्द से मैंने अपने हाथों को ही मुंह में दबोचा था। तभी से कभी-कभी इसी पिंडली में दर्द होता है। इसी का आपरेशन हुआ था पिछले दिनों।

सभी दर्द से हट कर आज का दर्द उनका अपना न था। वह था धनों दादी का दर्द। वह शाम चार बजे यहां एडमिट हुई थी। एक बेटा और एक बहू साथ थे। वह अपने पोते को जुलाब बन्द करने की जड़ी लाने जंगल गई थी। तभी एक पत्थर गिरने से पीठ में चोट लगी। बूढ़ी दादी को मूर्छित हालत में सीधा हॉस्पिटल पहुंचाया गया।

दादी का जर्जर बूढ़ा शरीर, गला रुंधा हुआ। न चीख सकती थी, न तड़प सकती थी। आंखें छत की तरफ आधी सफेद किए हुए थी। सभी कहते अब दादी बचेगी नहीं। मरीज़ तो सारे थे पर अब सभी सोचते असली मरीज़ तो दादी है। खाना आया था। दो-तीन बच्चों को छोड़ सभी ने कहा - आज भूख नहीं है।

डॉक्टर भी एक नहीं तीन-तीन, चार-चार इकट्ठे आए, पर दादी होश में न आ पाई। नींद भी एक काल है। न जाने सभी मरीज़ और उनके साथ रह रहे एटैण्डैंट शायद सो गए होंगे। बेटा-बहू दादी के हाथ-पांव, सिर दबाते रहते। डॉक्टर ने धीरे आकर कहा - "शी इज़ नो मोर"।

लाल पट्टू से दादी का मुंह ढांप दिया। बेटा धीरे से पीछे हटा - बहू ने चारों ओर निहारा, फूट कर रोना चाहती थी। दो आंसू टपके थे उसके गाल से।

सुबह जब सभी की नींद बहादुर की "चाय-चाय" की आवाज़ से खुली तो देखा - दादी पट्टू ओढ़ हमेशा के लिए सो गई थी। हल्का सा पर्दा उस के चारों ओर किया गया। बेटा गांव वालों को पता करने गया और सभी मरीज़ों ने धीरे से अपने घाव सहलाए और दर्द का अहसास करने लगे। उन्हें महसूस हुआ यह दर्द भी कोई दर्द है। वास्तव में दर्द तो दादी ने झेला। हम तो यूं ही कराह रहे थे।

कमल ने चाय वाले से कहा - भैया दस बजे के बाद चाय लाना।

डॉक्टर के रौंड का समय हुआ है। सभी एटैण्डैंट बाहर गए। होम गार्ड के हवलदार ने दौरा किया। पूरी साफ-सफाई थी चारों ओर। हर रोज़ की तरह फाइलें सज गई थीं बिस्तरों पर।

कमल के पास आकर डॉ० पाल ने कहा - "हैलो यंग मैन कैसे हो? हाउ इज़ योर पेन?"

कमल मुस्कुराया - "ठीक है सर।"

"ओके कमल, टेक योर मैडिसन रेगूलरली।" डॉ० पाल ने धीरे से पीठ थपथपाई थी कमल की।

बाहर बरसात हो रही थी। गांव से भीगे हुए सभी गांववासी आए। धीरे से दादी को ले गए थे दूर अपने गांव जहां उसने अपने जीवन के सहत्तर वसन्त देखे थे।

कमल ने आह भरी - अपना दर्द क्या है? पराया सुख क्या है? उसे लगा मुझे एक महीना और यहां रहना है। न जाने क्या-क्या और अभी देखना है उसे। फौजी भाई को आज छुट्टी हो रही है।

बीज आलू की फसल

ध्यान देने योग्य बातें

-यादराम
प्र.नि., एल.पी.एस.

इसमें कोई दो राय नहीं कि लाहुल का बीज आलू सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रसिद्ध है। काश्मीर से कन्याकुमारी और पूर्व में अरुणाचल से पश्चिम में गुजरात, राजस्थान तक इसकी अपनी पहचान है। यह लाहुल के किसानों की एक मुख्य नकदी फसल है। हमारे किसानों को चाहिए कि इसके गुणवत्ता और भरपूर फसल लेने की विधि को सिर्फ कायम ही न रखें अपितु इसकी खेती में वैज्ञानिको द्वारा उपलब्ध की गई नई-नई जानकारियों को अपनाकर इसमें और सुधार लाएं ताकि इस बीज की मांग और बढ़ती रहे। बीज आलू के विपणन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, क्योंकि कृषि उपज की विपणन की अपनी समस्याएं होती हैं। इसी संदर्भ में 1997-1998 जहां अति मन्दगी का दौर रहा, वहीं 1998-1999 का साल सम्पूर्ण भारतवर्ष में और खास कर लाहुल के किसानों के लिए तो एक अविश्वसनीय तेज़ी का वर्ष रहा। हिमाचल सरकार ने लाहुल के बीज आलू की गुणवत्ता और इसकी मांग को देखते हुए सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश के आलू उत्पादक क्षेत्रों को बीज क्षेत्र घोषित किया हुआ है ताकि इन क्षेत्रों के लोगों को यहां से रोगमुक्त और अच्छा बीज मिलता रहे। इसके अतिरिक्त हिमाचल सरकार द्वारा घोषित परिवहन उपदान सिर्फ लाहुल आलू सहकारी सभा द्वारा वितरित बीज आलू पर ही मान्य है।

वर्ष 1998 में सब्ज़ी आलू में जब अभूतपूर्व तेज़ी आई तो हमारे किसानों ने भी काफी मात्रा में इस प्रमाणित बीज आलू को सब्जी आलू के रूप में बेच दिया। अल्प अवधि के लिए तो यह ठीक है, लेकिन अगर यह व्यावहारिक बन जाए तो इसके दूरगामी दुष्परिणाम भी सामने आएंगे। जैसे कि अगर सब्जी में कीमत ठीक मिले तो वही आलू बाज़ार में भेजना चाहिए जो आकार में काफी बड़ा हो और जो बीज के लिए उपयुक्त न हो। इसके साथ-साथ कुछ सावधानियां भी बरतने की भी आवश्यकता है। खासकर अगर बीज आलू को सब्जी के रूप में भेजना हो तो उसकी बिजाई कुछ समय पहले ही कर लेनी चाहिए और बाद में जब उपरी तनों को काट देते है तो दस-पंद्रह दिन तक आलू नहीं निकालना चाहिए और न ही इस दौरान खेत में पानी दें। अन्यथा इस प्रकार निकाले हुए आलू के छिलके कच्चे होंगे और फिर सड़ने का खतरा रहेगा। जैसा कि पिछले साल, खास कर के पट्टन वैली वालों ने जब सितम्बर माह के शुरू में आलू की खुदाई की तो काफी माल अभी पूर्ण रूप से पका नहीं था और छिलके काफी उतर रहे थे तो उनका आलू जो ग्रेडिंग के लिए आया तो काफी मात्रा में सड़ना शुरू हो गया। अन्य किसानों का जिन्होंने फसल को पूरा पकने के बाद भेजा तो उनका आलू ग्रेडिंग के बाद भी ठीक रहा। इस लिए मेरा आप लोगों से यह अनुरोध है कि आप लोग उपरलिखित बातों का ध्यान रखते हुए बीज आलू व सब्जी आलू की खेती के तरीकों को अपनाएंगे तो कम मात्रा में आलू के खराब होने की सम्भावना रहेगी और बाजार में उचित मूल्य भी मिलेगा।

पृष्ठ 9 की पादटिप्पणी

''स्फटिक की बनी यह प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में है-दाहिना पैर मुड़ा हुआ तथा बायां पैर लटक रहा है। निश्चित ही यह बोधिसत्व के बैठने का प्रकार है परन्तु शिव की अनेक प्रतिमाएं भी इसी आसन में देशभर में उपलब्ध है। प्रतिमा के छह हाथ दिखलाए गए हैं। दक्षिण की ओर से ऊपर का हाथ अभय मुद्रा में है, बीच के हाथ में अक्षमाला है, सबसे ऊपर के हाथ में त्रिशूल, बीच के हाथ में सर्प और नीचे के हाथ में मंगल कलश शोभित है। यह प्रतिमा यद्यपि शिव के लक्षणों से युक्त है परन्तु प्रतिमा के सिर पर धारित मुकुट पर पाल्थी मारे ध्यान-बुद्ध अमिताभ का अंकन इसे नि:संदेह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर सिद्ध कर देता है''।

'पश्चिमोत्तर हिमालय की बौद्ध संस्कृति एवं कला' विषय पर 20-24 सितम्बर, 1988 को बौद्ध दर्शन संस्कृत महाविद्यालय, केलंग में आयोजित संगोष्ठी में पढ़े गए शोध-पत्र **'लाहुली धर्म और कला की अन्तर्धाराएं'** -भवानी शंकर शुक्ल ***से उद्‌धृत।***

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा नमन, कुल्लू से टाईप सेटिंग तथा मुद्रित एवं (नीरामाटी) कुल्लू, से (हि०प्र०) से प्रकाशित। संपादक सुश्री छिमे शाशनी।

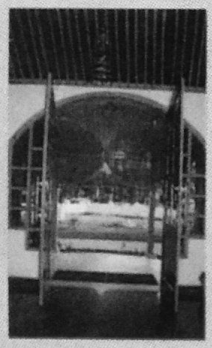

HOTEL Chandermukhi MANALI

Highway Road (Near Octroi Barrier)
Manali 175 131 (HP). Tel.: 01902-53279, 53879, 54179; Fax: 01902-53047

28 Elegant rooms including :

4 deluxe rooms, 20 super-deluxe rooms, 3 honeymoon suites and 1 family suite with kitchen. For refined palates our multi-cuisine ***Kufri Restaurant*** serves Indian, Chinese, Continental and also Himachal delicacies.

Family Suite with Kitchen	Rs. 2420/-	Honeymoon Suite	Rs. 1980/-
Super-Deluxe	Rs. 1320/-	Deluxe Room	Rs. 880/-

A Unit of :

The Lahaul Potato Growers Co-Operative Marketing cum Processing Society Limited, Manali

Printed at : Azad Hind Stores (P) Ltd., 34/17-E, CHD. Ph. 704511-14